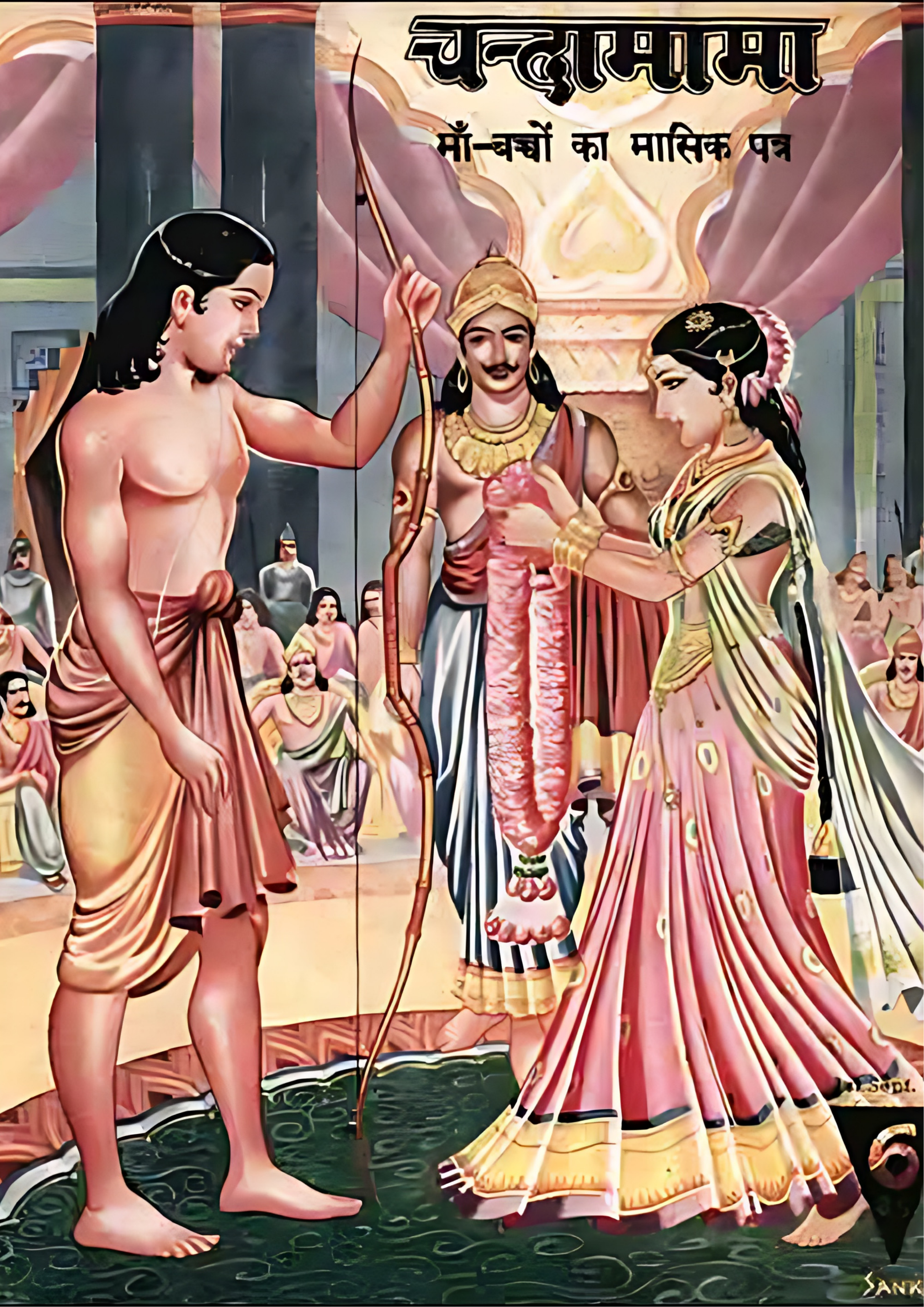
चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र

ब्रह्मदत्त जब काशी का परिपालन कर रहा था, बोधिसत्व एक ब्राह्मण घराने में पैदा हुये। बोधिसत्व के सयाने होते होते उनके एक भाई का भी जन्म हुआ।

थोड़े दिनों बाद उनके माँ बाप की मृत्यु होगई। इसलिये दोनों भाईयों को वैराग्य हो गया और उन्होने सन्यास ले लिया। वे गङ्गा नदी के किनारे, अलग अलग कुटिया बनाकर रहने लगे।

एक रोज, पाताल में रहने वाला सर्प राज.... मणिकान्त मनुष्य का रूप धारण कर, गङ्गा नदी के किनारे पैदल जा रहा था। जाते जाते छोटे भाई की कुटिया दिखाई दी और वह वहाँ चला गया। उससे बड़े प्रेम से बातचीत की। वे दोनों जल्दी दिली दोस्त बन गये।

उसके बाद तो मणिकान्त अक्सर छोटे भाई के पास आने लगा। वे दोनों कई रोज बातें करते करते मजे में साथ रहते। इतना ही नहीं, मणिकान्त अपना सर्प रूप धारण कर, छोटे भाई पर फण उठा कर पाताल लोक को जाने से पूर्व विदाई लेकर जाया करता।

"सर्पराज की मैत्री तो अच्छी है। परन्तु इसका दुष्ट स्वभाव है। इससे मेरे जीवन को कभी न कभी खतरा पहुँच सकता है।" वह मन ही मन डरने लगा।

इस हालत में वह एक बार बड़े भाई के पास गया। उसको देखते ही बोधिसत्व ने आश्चर्य से पूछा- "यह क्या बात है? तुम इतने दुबले हो गये हो। तुम्हारा रङ्ग भी बदल गया है। क्या वजह है?" छोटे भाई ने भी बिना कुछ लुकाये छुपाये सब कह सुनाया। सुनने के बाद बड़े भाई ने पूछा-“अच्छा भाई तुम क्या चाहते हो, मणि-

रघुवीर सिंह

कान्त तुम्हारे पास आया करे कि न आया करे ? बस, इतना बता दो।"

"न आया करे।" छोटे भाई ने कहा।

"अच्छा, जब वह सर्पराज तुम्हारे पास आता है तो क्या क्या आभूषण पहन कर आता है?" बडे भाई ने पूछा।

"चकाचौंध करने वाली एक मणि।" छोटे भाई ने जवाब दिया।

"अच्छा! जब इस बार वह तेरे पास आकर स्नेह से बातचीत करे तब तू उससे वह मणि माँग। तब देखना क्या गुजरती है।" छोटे भाई ने कहा- "अच्छा ! वैसे ही करूँगा।"

अगले दिन गणिकान्त कुटिया में आया। छोटे भाई ने सर्पराज से कहा कि उसको उसकी मणि चाहिये। बिना बैठे ही मणिकान्त झट अपने लोक को चला गया। दूसरे दिन फिर मणिकान्त आया। जब वह दरवाजे की देहली पर ही खड़ा था तो छोटे भाई ने पूछा-"कल ही मैंने मणि माँगी थी, तुमने दी नहीं। कम से कम आज तो दो।" उसका यह पूछना था कि मणिकान्त पीछे हटा और चला गया।

तीसरे दिन सर्पराज को फिर आया देख छोटे भाई ने जोर देकर पूछा- "कितनी ही बार तुमसे मणि माँगी; पर तुमने दी नहीं। अब दोगे कि नहीं?" सर्पराज ने एक पग भी आगे नहीं रखा, वहीं खड़े होकर उसने यों कहा-

"यह मणि मामूली मणि नहीं है; जो कुछ मैं चाहूँ उसे देनेवाली कामधेनु है। मेरी इच्छाओं को पूरी करनेवाली कल्पतरु है। ऐसी चीज़ को अगर भला तू माँगे तो में कैसे दे सकता हूँ? इसलिए मैं अब इस जन्म में तेरे पास नहीं आऊँगा।

फिर कभी तुझे नहीं दिखाई दूँगा।" यह कह मणिकान्त यहाँ से चला गया। फिर वह कभी छोटे भाई को न दिखाई दिया।

अब छोटा भाई और एक उलझन में पड़ गया। इतने दिनों तक जो दिली दोस्त रहा था, उसके न दीखने पर उसके मन में एक नई वेदना हुई। उसका शरीर अस्थि-पञ्जर सा हो गया।

इस बीच में यह देखने के लिये कि भाई का क्या हाल चाल है बडे भाई आये और उसे देखते ही उन्होंने आश्चर्य से पूछा-"तेरी हालत तो पहले से भी ज्यादा बुरी हो गई है। सर्पराज ने क्या अभी पीछा नहीं छोड़ा है ? जैसा मैंने कहा था वैसा किया कि नहीं ?"

"भाई ! जैसे तुमने कहा था वैसे ही किया। तब से सर्पराज ने आना बन्द कर दिया है। जब तक वह मणिकान्त आकर मुझसे बातचीत न करे, और मेरे सिर पर फण न उठाये, मुझे कुछ सूझ नहीं रहा है। मुझे पागलपन-सा हो गया है। इसी वेदना के कारण मैं काँटा होता जा रहा हूँ।" छोटे भाई ने कहा।

तब बड़े भाई बोधिसत्व ने यों कहा- "तू तो फूला न समाता था कि सर्पराज तेरा प्राण प्यारा मित्र है। मगर मणि माँगने पर वह तेरे दरवाजे के पास भी नहीं फटका। यही क्या मैत्री का लक्षण है? जो तेरी छोटी-मोटी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सका वह सचमुच का मित्र नहीं; अपितु वह स्वार्थी है। इसलिये तू दुःख मत कर।" यह हितोपदेश दे बोधिसत्व चले गये।

बड़े भाई के हितोपदेश का आन्तरन्गिक अर्थ समझ कर, छोटे भाई ने तब से सर्पराज के बारे में सोचना बन्द कर दिया।

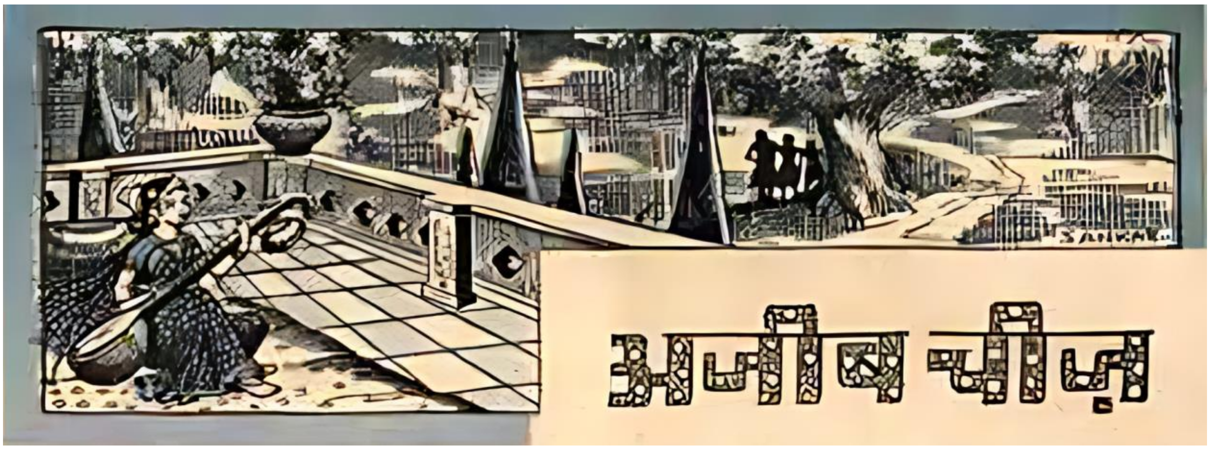

भवानी नगर में जयवर्मा नाम का एक बड़ा रईस रहा करता था। उसके तीन लड़के थे.... जयपाल, विजय, और जय। शक्ल सूरत में, व पढ़ाई लिखाई में उन तीनों में कम ही भेद था।

सचमुच वे बहुत ही बुद्धिमान थे और आपस में बहुत हिल मिलकर रहा करते थे। उनमें कोई ऐसी बात न थी जो एक दूसरे से छुपी हो। मगर हाँ, एक बात जरूर ऐसी थी जोउन्होंने एक दूसरे से छुपा रखी थी। और वह थी उनकी भवानी नगर की राजकुमारी से प्रेम की बात। तीनों एक ही राजकुमारी से प्यार कर रहे थे। उससे, चाहे जैसे भी हो, जब कभी हो, उन तीनों ने विवाह करने की ठान रखी थी।

वे तीनों हर शाम को राज महल के बगल वाले बगीचे में घूमने जाया करते। उसी समय उनको राज महल की छत पर राजकुमारी निरुपमा देवी घूमती हुई नजर आती। कभी कभी वह उनको बीणा पर सन्ध्या कालीन राग गाती हुई दिखाई देती। परन्तु उन भाईयों में कभी भी राजकुमारी के बारे में बातचीत न हुई। समय गुजरता गया। एक दिन जय वर्मा ने अपने लड़कों से यों कहा-

"पुत्रो ! मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। मेरे कमाये हुये घन से तुम आराम से जिन्दगी बसर कर सकते हो। परन्तु वह पुरुष लक्षण नहीं है। तुम्हारी शादी करने की अवस्था भी पास आ गई है। विवाह के बाद तुम्हारे अलग अलग घर बसेंगे। बाल बच्चे होंगे। धीमे धीमे रुपये कम होने की सम्भावना है। इस वजह से जैसा कि पुरुष धर्म है, देश में घूमो फिरो और पैसा

सत्यदेव

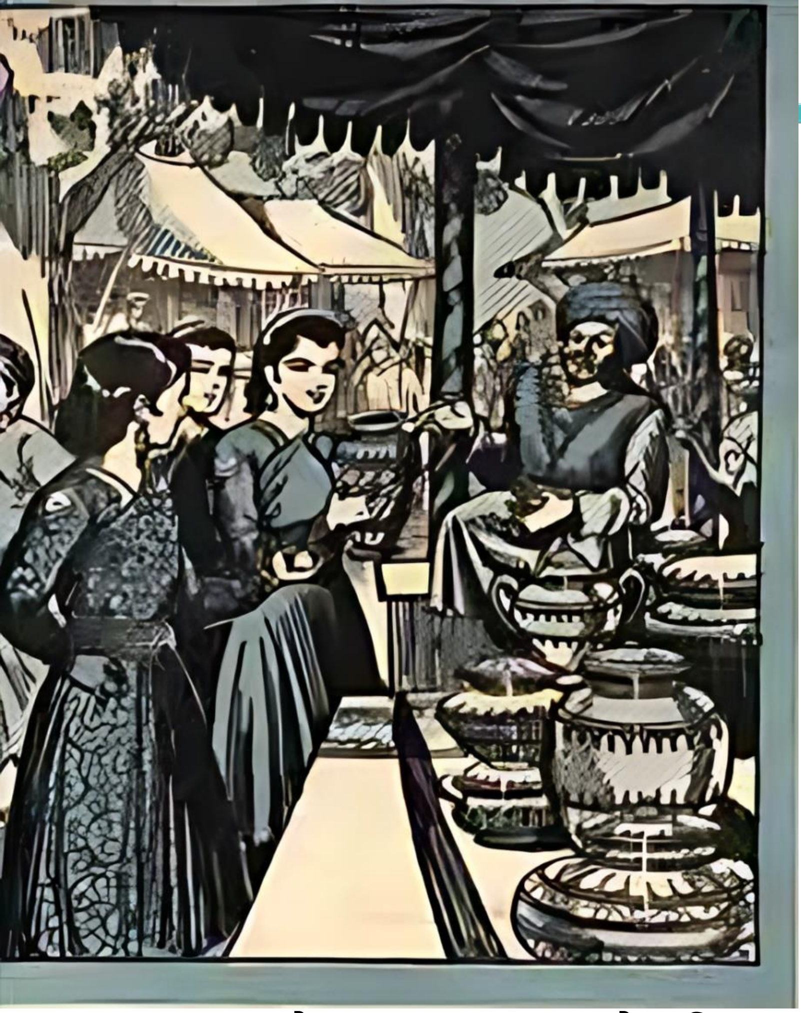

कमाओ। तब गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट करो।" वे तीनों नवयुवक पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर, सुमुहूर्त में, थोड़ा रुपया पैसा लेकर उत्तर की ओर चल पड़े। रोज भर पैदल चलने के बाद से एक नगर पहुँचे जहाँ मण्डी लगी हुयी थी।

उस मण्डी में तीनों भाईयों ने, जिसको जो जो पसन्द आया, खरीदा। उस दिन शिवरात्री थी। अगले दिन सवेरे तीनों तीन दिशाओं की तरफ चल दिये। जाते जाते उन्होंने यह भी निश्चय किया कि फिर अगले साल इसी मण्डी में शिवरात्री के दिन मिलेंगे।

देखते देखते, दिन, सप्ताह, महीने गुज़र गये। फिर शिवरात्री आई। उस नगर में फिर मण्डी लगी। उस साल अजीब चीजे बिकने के लिये आई। सब से छोटा भाई जय निश्चय के अनुसार वहाँ आ पहुँचा। उसने पिछले साल काफ़ी रुपया पैसा कमा लिया था। इसलिये भाईयों के आने से पहिले ही, वह एक विचित्र वस्तु खरीदना चाहता था।

कई चीजे दिखाई दीं। एक ही चीज ने जय को आकर्षित किया और वह चीज़ थी एक निम्बू। परन्तु वह कोई मामूली निम्बु की तरह नहीं था। चाहे कितनी ही भयङ्कर बीमारी हो, उस निम्बू को काट कर उसके रस को रोगी के मुख में निचोड़ने से वह बीमारी दूर हो सकती थी। एक हजार अशरफी देकर उसने वह निम्बू खरीद लिया और भाइयों की खोज करने लगा।

उसी दिन विजय भी निश्चय के अनुसार वहाँ आ पहुँचा। उसे भी व्यापार में अच्छा फायदा हुआ था। उसने भी एक हजार अशरफी की एक अजीब चीज़ खरीदी। मालूम है वह अजीब चीज़ क्या थी—एक कालीन। वह कोई मामूली कालीन न

थी। उस पर बैठ कर जहाँ चाहो एक क्षण में जाया जा सकता था।

सब से बड़ा भाई जयपाल भी उसी दिन यहाँ आ गया। उसके पास भी बहुत धन जमा हो गया था। उसने भी कई अजीब चीज़ों का भाव-ताव किया। आखिर एक छोटी सी दुकान में उसे एक शीशा दिखाई दिया। दूकानदार ने उसका दाम हजार अशरफी बताया।

"इस मामूली शीशे का दाम एक हजार अशरफी....! यह क्यों है? इसकी क्या खूबी है ?" जयपाल ने पूछा।

"महाराज ! यह शीशा सिर्फ चेहरा देखने के लिई नहीं है; आप जिस घड़ी जिस किसी को भी देखना चाहेंगे, उसी समय वह जिस अवस्था में होगा उसी अवस्था में इस शीशे में दिखाई देगा।" दुकानदार ने बताया। जयपाल को तुरन्त राजकुमारी निरुपमा देवी को एक बार देखने की इच्छा पैदा हुई। उसने बिना आगा-पीछा किये दुकानदार को हजार अशरफी दी और शीशा खरीद लिया। निरुपमा देवी का ख्याल कर उसने शीशे में देखा।

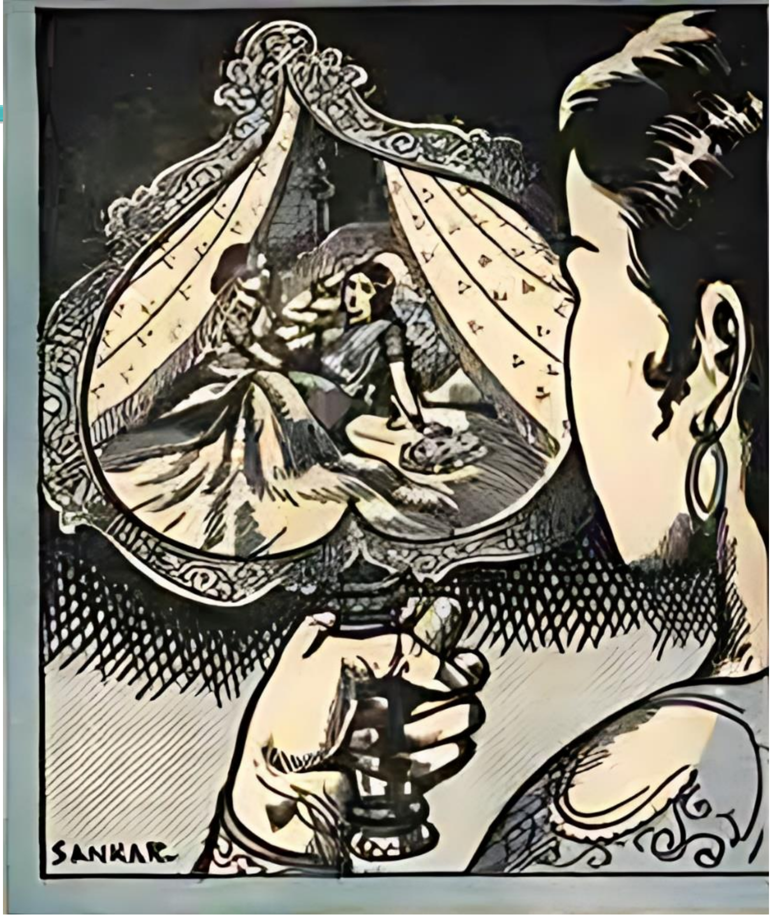

दूसरे क्षण उसका कलेजा थम सा गया।

जयपाल को उस शीशे में राजकुमारी दिखाई तो दी, परन्तु वह मरणावस्था में थी। वैद्य नाड़ी की परीक्षा कर, होठ समेट, अपना सिर मोडे हुये था। एक और आफत, अगर वह यहाँ जाना भी चाहे तो पूरे एक दिन का सफर था। फिर उसके पहुँचते-पहुँचते शायद सब कुछ खतम ही हो जाये।

उसी दुःख में लड़खड़ाता हुआ उस दूकान से दो-चार कदम आगे वह बड़ा ही था कि विजय ने सामने आकर "भैय्या....." कह कर पुकारा।

जयपाल की जान में जान आई। "देख विजय!" यह कह उसने राजकुमारी की बुरी हालत उसको शीशे में दिखाई। दिखा कर कहा- "इस विपत्ति के समय हम इतनी दूर हैं, इसका अफसोस है।"

"उसकी फिक्र मत करो।" विजय ने बगल में से लिपटी हुई कालीन को निकाल कर जमीन पर बिठाते हुये कहा-"इस पर बैठ कर हम एक क्षण में राजकुमारी के पास पहुँच सकते हैं।"

जयपाल का और हौसला बढ़ा । कालीन पर वे दोनों बैठने ही वाले थे कि इतने में "भाइयो....! भाइयो!" कहता जय आ पहुँचा।

"बातचीत के लिये समय नहीं है। कूद कर कालीन पर चढ़ बैठ। आखिरी बार निरुपमा देवी को जिन्दा देख आयें।" विजय ने कहा।

बिना कुछ कहे जय कालीन पर जा बैठा। दूसरे क्षण वे भवानीपुर के राजमहल में राजकुमारी निरुपमा देवी के पलङ्ग के पास थे।

जय ने उसके पास जाकर अपना निम्बू काट उसके सूखे होठों के बीच रस निचोड़ दिया।

अगले क्षण राजकुमारी की हालत में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। उसके चेहरे पर फिर से शान्ति आ गई। कुछ क्षण बाद उसने आँखें खोली और उठ कर बैठ गई। लोगों ने आनन्द के आँसू बहाये।

राज बन्धुओं के सन्तोष के अलावा, राजा ने जो कृतज्ञता उन तीनों भाईयों के प्रति दिखाई, वह अपार थी। उन तीनों भाईयों के हाथ पकड़ कर उसने यों कहा-"पुत्रो ! मेरी लड़की को मौत से बचाने के

लिये आप स्वर्ग से आये हुये देवता ही हो सकते हैं, मनुष्य नहीं। आप मेरी पुत्री की शादी होने तक मेरे घर में रह कर मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये।" भाइयों ने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया।

परन्तु एक और समस्या आ पड़ी। राजा ने यह घोषणा कर रखी थी कि जो कोई उसकी लड़की की बीमारी दूर कर देगा, उसके साथ अपनी लड़की की शादी कर देगा। घोषणा के अनुसार इन तीनों में से किसी एक के साथ अपनी लड़की का विवाह करना चाहता था। उन तीनों में से किसके साथ शादी की जाय ? यह निर्णय करने के लिये महामन्त्री को बुला भेजा।

तीनों का कहना सुन कर मन्त्री भी द्विविधा में पड़ गया। राजकुमारी के प्राण इन तीनों में किसने बचाये ? जयपाल ने अगर अपने शीशे में न देखा होता तो किसी को भी निरुपमा देवी की बीमारी के बारे में न मालूम होता। विजय अगर वक्त पर अपना गलीचा न देता तो वे समय पर नहीं पहुँच सकते थे। जय का अगर निम्बू न होता तो बीमारी ही दूर न होती।

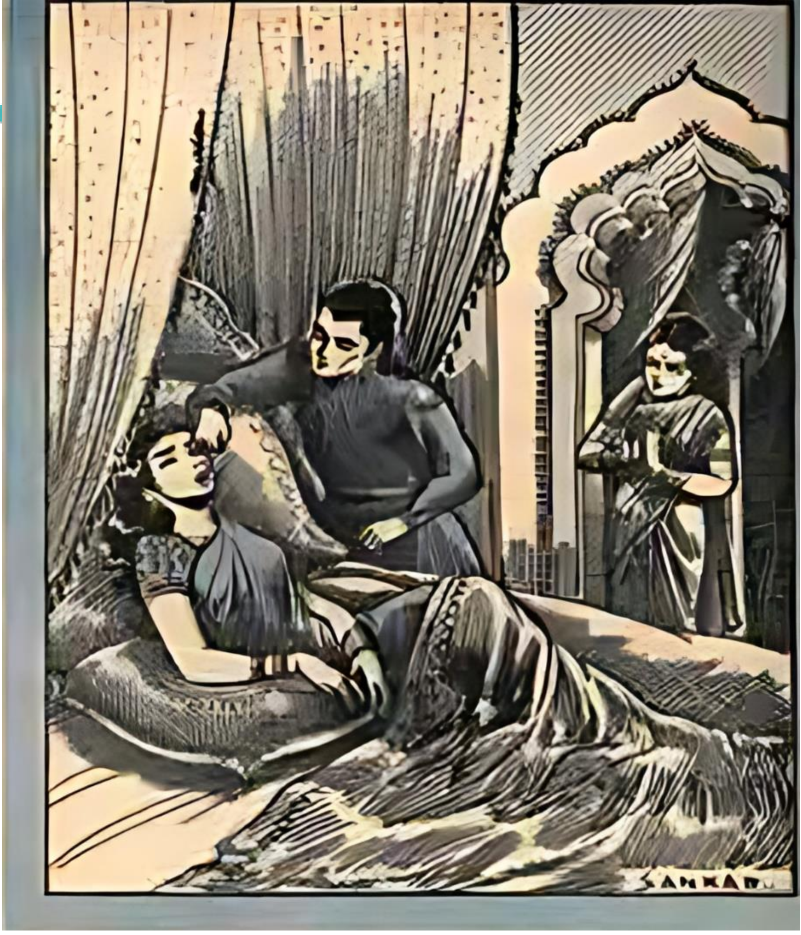

"अच्छा! राजकुमारी के साथ कौन शादी करेगा; यह आप ही तीनों आपस में फैसला करके बताईये।" मन्त्री के यह कहने पर तीनों भाई "मैं... मैं....!" कहने लगे।

"महा प्रभो! यह मामला तार्किकों के बगैर नहीं सुलझ सकता। एक सभा बुला कर, बडे बडे तार्किकों को यह समस्या दी जाय।" मन्त्री न कहा।

कुछ दिनों में सभा बुलाई गई। जैसे जैसे दिन गुजरते जाते थे वैसे वैसे विवाद भी बढ़ता जाता था। पर समस्या वैसी की वैसी उलझी रही।

आखिर, राजकुमारी निरुपमा देवी को दखल देना पड़ा। उसने सभा से कहा कि उसको भी इस समस्या को सुलझाने के लिये समय दिया जाय।

जिस समस्या को वे नहीं हल कर पाये क्या राजकुमारी हल कर सकेगी ? यह सोच दिग्गज तार्किक आश्चर्य करने लगे।

"मुझे ऐसा लग रहा है कि आप सब लोग गलत रास्ते पर सोच रहे हैं। मेरे प्राणों की रक्षा करने में इन तीनों में किसका ज्यादा हाथ है, आप इस विषय की चर्चा कर रहे हैं। तीनों को इसका श्रेय बराबर है। परन्तु आप एक बात की उपेक्षा कर रहे हैं। वह यह कि आपने यह नहीं सोचा कि मेरे लिये सबसे अधिक त्याग किसने किया है ?

जयपाल का शीशा, विजय का गलीचा, और जय का निम्बू इन तीनों ने मेरी प्राण रक्षा की है। परन्तु जयपाल का शीशा जयपाल के पास ही है। वह औरों को भी उसमें देख सकता है। विजय का गलीचा भी विजय के पास है। उस पर बैठकर वह और जगह भी जा सकता है। परन्तु जय का निम्बू काम में आ चुका है। उससे वह और किसी को अब नहीं जिला सकता। अब आप सब लोग निर्णय कीजिये कि मेरे पति होने का कौन अधिकारी है।" राज-कुमारी ने कहा।

निरुपमा देवी की सूक्ष्म बुद्धि की सबने प्रशंसा की। उसकी शादी जय से बड़े धूम धाम से हुई।

जय ने अपने दोनों भाईयों का, जिन्होने उसकी हर तरह से मदद की थी, बड़ा सम्मान किया। जय वर्मा भी अपने लड़कों को इस प्रकार काम काजी देखकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

अरब देश के किसी गाँव में अलि मोहम्मद नाम का एक व्यक्ति रहा करता था। वह बहुत ही सीधा सादा था इसलिये लोग उसे भोन्दु समझा करते थे।

एक दिन उसके दो दोस्तों ने दलील दी कि भूत होते हैं। अलि मोहम्मद का कहना था कि भूत प्रेत कुछ नहीं होता। अली के दोस्तों ने बताया गाँव के बाहर, पहाड़ पर जो बढ़ का पेड़ है वह भूतों से लदा पड़ा है।

"वह बिल्कुल झूठ है।" अलि ने कहा।

"कहना आसान है, अमावस की घनी अन्धियारी में क्या तू अकेला वहाँ एक रात गुज़ार सकता है ?" उसके दोस्तों ने पूछा।

"मुझे तो कोई डर नहीं है।" अलि ने कहा।

"अच्छा, तो फिर कल अमावस है। कल शाम से सवेरे तक घने अन्धेरे में, पहाड़ पर बढ़ के नीचे बैठ। अगर तूने यह काम कामयाबी से कर दिखाया तो हम तुझे भरपूर खिलायेंगे, अगर न कर सका तो तुझे हमें खिलाना होगा। यह रही शर्त।" अलि के दोस्तों ने कहा।

अलि मान गया। अगले दिन साँझ को तीनों दोस्त स्वच्चरों पर चढ़ पहाड़ पर गये। अन्धेरा होते होते अलि के दोस्तों ने उसको वहाँ अकेला छोड़ कर, उसके खच्चर को साथ ले गाँव की ओर चले जाते जाते उनमें से एक ने कहा-"देखो.... शर्त का ठीक तरह पालन करना। कल सवेरे हम तेरे लिये वापिस आयेंगे। अगर तब तक तू जिन्दा रहा तो तुम से मिलेंगे ही। क्यों ! ठीक हैं?" वे हँसते हँसते चले गये।

भीमसेन

क्योंकि गाँव पहाड़ की आड़ में था, वहाँ अन्धेरा हो चुका था। धीमे धीमें घरों में चिराग जलने लगे। थोड़ी देर में ठण्ड भी शुरु हो गई। फिर ओस पड़ने लगी। अलि को भूख और ठण्ड सताने लगी।

अगर इन दिक्कतों की तुलना की जाय तो भला भूतों का डर कितना है? सबेरा होने पर, मैं ही तीन आदमियों के लायक भोजन खा जाऊँगा।" अलि ने सोचा।

रात ज्यों ज्यां बीतती जाती थी त्यों त्यों चिराग भी बुझने लगे। एक दुमञ्जिले मकान में अलि ने देखा कि अभी दीया नहीं बुझा है। कौन जागा हुआ है? क्यों जागा हुआ है ? यह कल्पना कर अलि अपने ठण्ड और भूख की बाधा को भुलाने की कोशिश कर रहा था। न जाने क्यों, यह दीया रात भर जलता रहा।

सवेरा हुआ। अलि के दोस्त तीन खच्चरों को लेकर आये।

"भूख से मरा जा रहा हूँ। शर्त चूँकि मैंने जीती है जल्दी मुझे खाना खिलाओ।" अलि ने दोस्तों से कहा।

"बकवास मत कर यार। जो शर्त के बारे में हमने नियम बताये थे, अगर उनका पालन किया है तो हम मानने को तैयार हैं। वरना तुम्हारी हार होगी।"

"रात भर इस बढ़ के पेड़ के नीचे ही तो बैठा रहा, और भला नियम क्या है ?" अलि ने पूछा।

"जरा सोच लो। रात भर घने अन्धेरे में बैठे थे ?" मित्रों ने सवाल किया।

"मेरे पास भला यहाँ कहाँ चिराग था ?" अलि ने सन्देह से उनको देखते हुये कहा।

"क्या यह काफी है कि चिराग पास नहीं है ? हमें मालूम हुआ है कि पिछली रात को, एक दुमञ्जिले मकान में

एक मोमबत्ती रात भर जलती रही। क्या उसकी रोशनी तुम्हे नहीं दिखाई दी ?" उन लोगों ने पूछा।

अलि ने आश्चर्य में उनसे कहा-"जो तुम कह रहे हो ठीक है......"

"तब क्या ? तुम हार गये हो। अब तुम ही दाबत दो।" दोस्तों ने कहा।

"कहीं मील दूरी से मोमबत्ती की रोशनी भला मुझे कैसी मिल सकती है ?" अलि ने भौंचक्का होकर पूछा।

"एक मील हो या दो मील। जब रात भर वह रोशनी दीखती रही तो तुम यह कैसे कह सकते हो कि तुमने सारी रात अन्धेरे में गुजारी ?" मित्रों ने कहा।

अलि यह ताड़ गया कि उसे धोखा देने के लिये उन लोगों ने खुद मोमबत्ती जला कर उसे रोशनी दिखाई थी।

"अच्छा, तो मैं ही शर्त हार गया। भोजन के समय हमारे घर आना। मैं तुम दोनो को खाना खिलाऊँगा।" अलि यह कहकर अपने घर चला गया।

वे दोनों ठीक भोजन के समय अलि के घर जा पहुँचे। अलि ने उनका

स्वागत-सत्कार किया और उनसे गप्पें मारने लगा।

बहुत देर गप्पें लगने के बाद अतिथियों अलि से पूछा-"क्यों, अभी खाना तैयार नहीं हुआ है क्या ?" अलि ने झट अन्दर जाकर कहा कि "अभी नहीं बना है" फिर गप्पें लगने लगीं। एक बार और अलि अन्दर गया और उसने कहा-"खाना तैयार हो रहा है।"

सूर्य ऐन सिर पर आगया था। अलि के दोस्तों की भूख की हद न थी। अलि ने पाँच छह बार घरके अन्दर जाकर कहा कि खाना बन रहा है, अभी बन जायेगा। मगर उसने यह न बताया कि कब।

आखिर अलि के एक मित्र ने कहा- "खैर, देर हो गई है तो कोई बात नहीं। कम से कम अच्छे पकवान तो बनवा रहे हो ?"

तब अलि ने तैयार किये जाने वाले पकवानों का नाम गिना दिये। अतिथि बड़े खुश हुये और फिर बातों में लग गये। धीमे-धीमे दुपहर भी ढल गई। अलि ने एक बार अन्दर जाकर कहा-"अब क्या रखा है ? खाना तैयार हो ही गया है।"

अलि के दोस्त तब न रह सके।

"कहाँ है; जो तुम खाना बनवा रहे हो? हमें एक बार दिखाओ। नहीं तो हमें तसल्ली नहीं होगी।" उन्होंने कहा।

"अगर तुमको मेरी बात पर यकीन नहीं है तो खुद आकर देख लो।" कहता हुआ अलि अपने दोस्तों को रसोई घर में ले गया। चूल्हे पर एक बड़ी कढ़ाई में मांस, सब्जी वगैरह का होना तो सच था, मगर कढ़ाई के नीचे आग नहीं थी.... केवल एक मोमबत्ती जल रही थी।

"तो क्या इतनी देर इस मोमबती से ही हमारा खाना बना रहे थे ? हम भला कब खाना खायेंगे ? यह सब सरासर धोखा है।" अलि के दोस्तों ने तिल-मिलाते हुये कहा।

"मित्रो ! तुम्हारी बातों पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। वह मोमबत्ती जो एक मील दूर से अन्धेरा दूर कर सकती है; क्या वह दो आदमियों के भोजन के लिये ईन्धन का काम नहीं कर सकती ? मैं तो खा चुका हूँ, अगर तुम लोग सब्र रखोगे तो खाना तैयार होते ही मैं परोस दूँगा।" अलि ने कहा।

इन बातों को सुन अलि के दोस्त शर्मिन्दे हुये, और जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते चले गये।

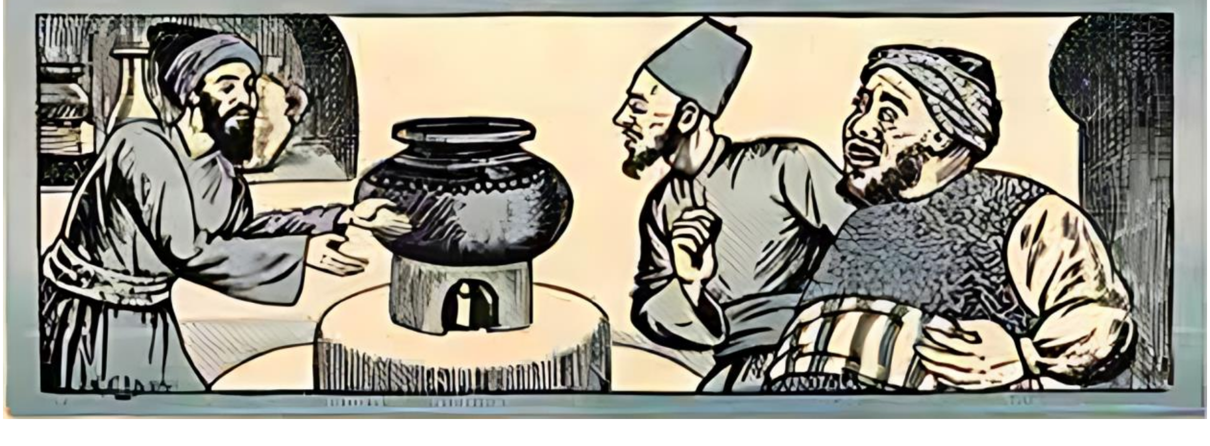

चतुर्नेत्र को यकायक अपने सामने पा समरसेन और उसके सैनिकों का कलेजा थम सा गया। उस नये सिपाही के डर की तो हद ही न थी। चतुनेत्र के उल्लू और नरवानर वहीं आसपास खड़े ही यह तमाशा देख रहे थे।

"दूसरों को हानि पहुँचाना मेरा काम नहीं है। डरो मत!" चतुर्नेत्र ने मुस्कुराते हुए कहा। "एकाक्षी के सिवाय मेरा इस दुनियाँ में कोई शत्रु नहीं है।उसे भी शत्रु इसलिये मानना पड़ा क्योंकि वह मुझे मार देना चाहता है। अच्छा, तो यह नया आदमी कौन है ?" चतुर्नेत्र ने विपत्ति से बचाये हुये सैनिक की ओर अंगुली दिखा कर पूछा।

"मेरा नाम धनपाल है। आपत्ति में से मुझे इन्ही लोगों ने बचाया है।" धनपाल ने डरते डरते कहा। ये बातें सुन चतुर्नेत्र ने हँस कर कहा-

"अब तुम फिर एक नई आफत में फँसने जा रहे हो। अगर तुम्हारा किसी ने

पहले कभी बुरा करना चाहा था, वह सिर्फ एकाक्षी था। परन्तु अब इस द्वीप के दक्षिण के पर्वत-भाग के परे से तुम जैसे मनुष्यों से ही आपको खतरा पहुँचेगा।"

इसी समय झाड़ियों के पीछे छुपे दो जङ्गली इन्हें देख रहे थे। परन्तु अफसोस यह कि न समरसेन को न उसके सैनिकों की ही उनकी गन्ध थी।

समरसेन ने बड़ी दीनता से कहा-"चतुर्नेत्र! आप मान्त्रिक होते हुये भी भले नजर आते हैं। अगर आपके कहने के मुताबिक हम सचमुच आफत में फँसने वाले हैं, तो उससे बच कर बाहर जाने का भी उपाय बतलाईये।"

चतुर्नेत्र ने झट कोई जवाब न दिया। थोड़ी देर सोच कर सिर हिलाते हुये कहा-"इस द्वीप के दिक्कतों का मुख्य कारण, पश्चिमी समुद्र के किनारे, आधा डूबा हुआ एक जहाज है। यह सबको मालूम ही है कि वह जहाज धनधान्यों से भरपूर है। यह भी लोग जानते हैं कि उस धन से लोगों को खास काम भी न होगा। परन्तु एकाक्षी की नजर उसी धन पर है। और मुझे उस जहाज की रखवाली करनेवाली नागकन्या चाहिये। अगर तुम बताओ कि तुम्हें क्या चाहिये, मैं जो कुछ बन सका वह करूँगा।"

शायद चतुर्नेत्र कुछ और कहता, परन्तु इस बीच धनपाल काँपता काँपता जोर से चीख उठा। समरसेन और अन्य सैनिकों ने उसकी तरफ मुड़ कर चिन्ता से पूछा-"क्यों, क्या बात है! क्या है ?"

धनपाल दूर की झाड़ियों की ओर ईशारा कर पागल की तरह चिल्लाने लगा-"देखो, देखो। वे फिर वापिस आ गये हैं। मुझे इन्ही लोगों ने पेड़ से बाँधा था।"

समरसेन और उसके सैनिकों को झाड़ियों में से छुपकर देखते हुये दो जङ्गली आदमी दिखाई दिये। तुरन्त समरसेन ने धनुष पर बाण चढ़ाया, परन्तु चतुर्नेत्र ने उसे रोकते हुये कहा-

"समरसेन। तेरे बाण उन पर काम नहीं करेंगे। आकाश में उड़नेवाले गरुड़ और भूमि पर छलाँग मारनेवाले चीते को तेरे बाण मार सकते हैं। परन्तु ये लोग तेरे बाण से भी ज्यादा तेज भाग सकते हैं। वे तुम्हारे बस के नहीं हैं। उनकी खबर तो में लिये लेता हूँ।"

यह कह नरवानर और उल्लू को चतुर्नेत्र ने पुकारा। पास खड़े हुये नरवानर और उल्लू अपने मालिक की पुकार सुनते ही, झट एक फलाँग में उसके सामने जा खड़े हुये।

"नरवानरा ! तुम इन भागते हुये जङ्गलियों का काम तमाम करो। उलूका ! तुम आस- पास के इलाके को चारों तरफ से उड़ कर देख आओ।" चतुर्नेत्र ने आज्ञा दी।

तुरत नरवानर भागा। देखते देखते उन जङ्गलियों में से एक को उसने अपने ताकतवर हाथों के बीच लपेट लिया।

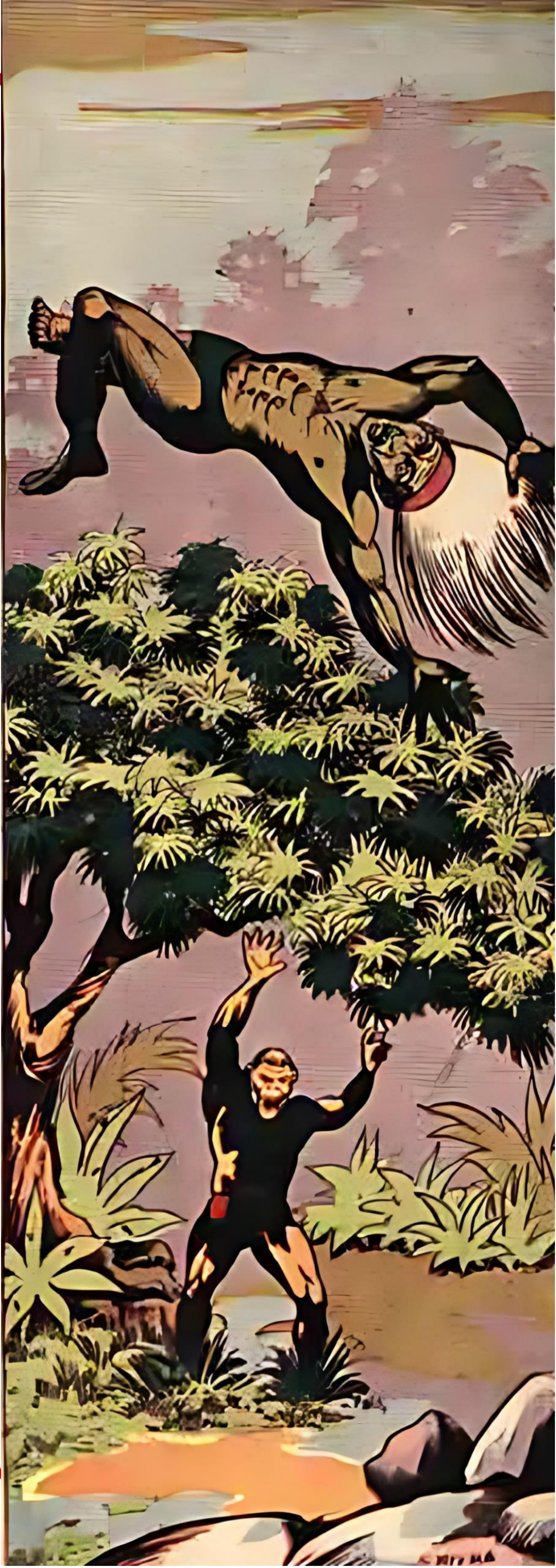

जङ्गली डर के मारे चिल्ला रहे थे। उनके चिल्लाने से सारा जङ्गल गूँज रहा था। नरवानर ने एक दो बार उसे हवा में उछाल दिया। यह चीखता-चिल्लाता दूर पड़े पत्थरों पर जा गिरा।

भागते हुये दूसरे जङ्गली पर उल्लू मँडराने लगा। वह अपने पञ्जे और चोञ्च से उसके सिर पर, चीख-चीख कर भोंकने लगा। इस अजीब लड़ाई को देख कर सब खुश हो रहे थे।

इतने में धनपाल ने "प्यास लग रही है। कहीं यहाँ पीने का पानी मिलेगा?" एक सैनिक से पूछा। यह बात सुन चतुनेत्र ने कहा-"जल्दी में कहीं प्यास बुझाने के लिये गये तो हो सकता है कि कहीं प्राण ही गँवा बैठो। इस द्वीप की हालत कुछ ऐसी ही है। मेरे साथ आओ। तुम्हें एक अच्छी झील दिखाऊँगा। वह झील दूर भी नहीं है।"

सब उस झील के पास गये। उस झील में क्रूर-जन्तु तैर रहे थे। धनपाल ने किनारे पर खड़े होकर अपनी प्यास बुझाई।

समरसेन कुम्भाण्ड के बारे में धनपाल ने जो कहा था, सोच रहा था। वह अनुमान करने की कोशिश कर रहा था, दक्षिण के पहाड़ों की तरफ से उन पर हमला करने के लिये कौन आ सकते हैं। एक ही क्षण में वह जान गया कि वे कौन हो सकते हैं। हो न हो, वे कुम्भाण्ड और उसके साथी ही हैं। जङ्गलियों को साथ लेकर वह धन-धान्यों से भरे जहाज को लूटने के लिये जा रहा होगा, सगरसेन ने अनुमान किया।

"चतुर्नेत्र ! अब यह तो बताओ कि उस जहाज की रखवाली करनेवाली नागकन्या की बात सच है या झूठ ?" समरसेन ने भी धीमे मुस्कुराते हुए पूछा।

'इस में कुछ भी झूठ नहीं है। अगर यकीन न हो तो मेरे पास आओ। थोड़ी दूर चलने पर मैं जहाज और उस नागकन्या को भी दिखा सकता हूँ।" चतुर्नेत्र ने कहा।

चतुर्नेत्र आगे आगे रास्ता निकालता हुआ बढ़ा। उसके पीछे पीछे समरसेन और उसके सैनिक चल रहे थे। थोड़ी देर में वे एक ऊँची जगह पर पहुँचे। वह कोई पहाड़ की चोटी सी लगती थी। वहाँ से शान्त समुद्र दिखाई देता था।

"देखो ! जहाज दिखाई दिया कि नहीं ?" चतुर्नेत्र ने अपने अंगुली से समुद्र की ओर सङ्केत करते हुये, समरसेन से पूछा। समरसेन और उसके सैनिक उस तरफ देखने लगे। उन्हें जहाज साफ साफ दिखाई दिया। वह समुद्र में आधा ही डुबा हुआ था। पाल फटकर चीथड़े हो गये थे। जहाज लहरों के साथ हिंडोले ले रहा था। परन्तु उसकी रखवाली करनेवाली नागकन्या उन्हे कहीं भी न दिखाई दी।

"नागकन्या क्यों नहीं दिखाई देती ?" आश्चर्य से समरसेन ने चतुर्नेत्र से

पूछा। यह प्रश्न सुन चतुर्नेत्र ने मुस्कराकर कहा-"समरसेन! अगर वह नागकन्या तुम्हारी आँखों को भी दिखाई देने लग जाय तो फिर हमारे ये मन्त्र-तन्त्र किस काम के ? उस नागकन्या को मैं और एकाक्षी ही देख पाते हैं। एकाक्षी धन हड़पने के लिये नागकन्या पर खौफ खाये हुये है और में उससे प्रेम करता हूँ।"

उसके बाद समरसेन और कुछ न पूछ सका। उस धन राशी की बात सुन कर उसने पहिले तो यह सोचा कि उसको जैसे तैसे लेकर कुण्डलिनी द्वीप जा पहुँचे। पर उसे अब मालूम हुआ कि वह उसके

बस की बात न थी। इसके अलावा वह राजद्रोही कुम्भाण्ड भी इसी के लिए दौड़ धूप कर रहा था। एकाक्षी मान्त्रिक का डर तो पहिले की तरह बना ही हुआ था। और तो और; बिना मन्त्रशक्ति की सहायता के, उस नागकन्या की नजर बचाकर वहाँ तक पहुँचना भी असम्भव है।

समरसेन क्या सोच रहा है यह जानकर चतुर्नेत्र ने अट्टहास किया।

"समरसेन! तेरे विचार मुझे मालूम हो ही रहे हैं।" चतुर्नेत्र ने कहा। "मुझे इस वक्त एक बात सूझ रही है। तेरी नजर उस जहाज में रखे धन राशी पर है, यह मुझे पहिले ही मालूम था। इस धन आदि के सम्बन्ध में मुझमें और तुममें कोई होड़ नहीं है। तुमसे होड़ करनेवाला वह एकाक्षी ही है। अगर हम दोनों मिल कर काम करें तो सब काम कर सकते हैं। मुमकिन है कि तब तुम धन पा जाओ और में नागकन्या।"

चतुर्नेत्र के यह कहते कहते ही समरसेन में बेहद हौंसला आ गया। उसमें एक नई आशा पैदा हो गई। राजद्रोही कुम्भाण्ड को मार देना है। हो सके तो उस जहाज में रखी सम्पत्ति को भी प्राप्त करना है।

परन्तु उस सम्पत्ति के साथ वह जहाज समुद्र में क्यों ऐसा रह गया ? समरसेन यह रहस्य जानने के लिये उतावला होने लगा।

"चतुर्नेत्र! मान्त्रिकों से मनुष्यों का डरना स्वभाविक है। परन्तु इस द्वीप में रहनेवाले एकाक्षी में और आप में आसमान पाताल का अन्तर है। आप दयालू और सज्जन मालूम होते हैं। अगर मैं आपकी कुछ सहायता कर सकता हूँ तो जरूर करूँगा। परन्तु हाँ... मैं यह चाहता हूँ कि आप धन से भरे उस जहाज का रहस्य हमें बतायें।" समरसेन ने पूछा।

यह सुन चतुर्नेत्र ने झट जवाब न दिया। आना कानी करता इधर उधर देखने लगा। यह सोचते हुये कि बताया जाय कि न जाय।

"यह जहाज, धन राशी ! नाग कन्या; अगर इन सब के बारे में कहना हो तो बहुत कुछ कहने को है। वह सब सुनने के लिये हो सकता है, तू उत्सुक भी न हो। संक्षेप में कहता हूँ-

शायद तुमने शमन द्वीप का नाम सुना होगा। अगर सुना भी हो तो शायद आप उसे दूसरे नाम से पुकारते होंगे। इस शमन द्वीप का परिपालन राजा शाक्तेय किया करता था। शाक्तेय कहने से तुम्हे मालूम हो गया होगा कि वह चण्डिका का भक्त था। मन्त्र तन्त्र में उससे मुकाबला करनेवाला कोई नहीं था।

एक बार नवरात्रि के उत्सव हो रहे थे। शाक्तेय स्वयं पूजा कर रहा था। यकायक लोगों के कोलाहल के बीच में से चण्डिका यों बोली-

'भक्तो ! मैं तुम्हारी भक्ति की प्रशंसा करती हूँ। परन्तु सिर्फ पूजाओं से मैं सन्तुष्ट नहीं होती। मेरे लिये एक सुन्दर देवालय बनाओ।' चण्डीदेवी ने गर्जना की।

'माँ, तेरे लिये एक बड़ा देवालय बना दूँगा। उसका गोपुर इतना ऊँचा होगा कि आकाश को भी चूमेगा।' शाक्तेय ने मनौती की। परन्तु चण्डीदेवी फिर इस प्रकार बोली-

'मेरा देवालय अगर मामूली ईन्ट और मसाले से बनाया गया तो मुझे तसल्ली न होगी। सोने चान्दी से बनाओ, तभी मैं सन्तुष्ट होऊँगी।'

शाक्तेय काँप उठा। देवी की आज्ञा तो शिरोधार्य थी। बड़े देवालय को बनाने के लिये जरूरी सोना चान्दी कहाँ से मिले ?" (अभी है)

पहले कभी एक गाँव में गोपीचन्द नाम का गृहस्थी रहा करता था। उसकी पत्नी का नाम था चेतना। उसके चार लड़के थे। चारों का विवाह हो चुका था। घर में बहुएँ भी आ गई थीं।

चेतना घरवार चलाने में बहुत ही चतुर थी। पर उसे यह ख्याल सताने लगा कि उसके बाद घरबार का काम चारों में से कौन सी बहु सम्भालेगी।

पत्नी को चिन्ता में पड़ा देख गोपीचन्द ने चारो बहुओं की परीक्षा लेने का निश्चय किया। उसने एक एक बहु को बारी बारी से बुलाया और हरेक को पाँच पाँच गेहूँ के दाने दिये और उन दानों को तब तक हिफाजत से रखने को कहा जब तक वह उन्हें वापिस न माँगे। बड़ी बहु सुषमा ने यों सोचा-"घर में हमेशा गेहूँ तो रखे ही रहते हैं। ससुरजी जब पाँच दाने वापिस माँगेगे तभी उन्हे रसोई में से निकाल कर दिये जा सकते हैं। जब यह बात है तो इन गेहूँ के दानों को सुरक्षित रखने की क्या जरूरत है ?" यह सोच सुषमा ने ससुर के दिये हुये गेहुँओं को फेंक दिया।

दूसरी बहु भोगवती ने भी सुषमा की तरह सोचा। मगर उसने गेहुँओ को फेंकने के बदले उनको खा लिया।

तीसरी बहु रक्षिका ने ससुर के दिये हुये गेहुँओं की एक पुडिया बाँधी और पुडिया को हिफाजत से सन्दूक की तह में रख दी।

चौधी बहु रोहिणी ने इस प्रकार सोचा -"समुर जी न जाने इन गेहुँओं को कब वापिस माँगेगे। गेहुँओं को दो ही

शान्तिकुमार

काम के लिये हिफाजत से रखा जाता है। या तो खाने के लिये, नहीं तो बोने के लिये। खाने के लिये तो ये पाँच दाने क्या काम आयेंगे। इसलिये इनको हिफाजत से रखने का मतलब है कि मौसम आने पर इनको फिर बोया जाय।" यह सोच रोहिणी ने उनको बोने के लिये अपने मायके भेज दिया।

रोहिणी के मायके के लोगों ने पाँच दानों को बोकर पाँच पौधे तैयार किये। फसल आने पर उनको काटा। अगले साल गेहुँओं के लिये खबर नहीं आई। इसलिये सारी की सारी फसल को फिर बो दिया। फिर फसल काटी। इस तरह लगातार पाँच साल बीत गये। "मैंने कहा, मैं तो अब बुढ़ी हो गली, अब परवार चलाना मेरे बस की बात नहीं है। आपने कहा था कि किस बहू को यह काम सौंपा जाय, सोचकर बतायेंगे। पाँच साल बीत गये हैं, फम से कम अब तो कोई बात तय कीजिये।" चेतना ने अपने पति से कहा।

गोपीचन्द ने बहुओं से अपने गेहूँ के पाँच दाने वापिस माँगे। सुषमा और भोगवती दोनों ने रसोई से पाँच पाँच गेहूँ के दाने लाकर उनको दे दिये। तीसरी बहु ने भी अपने सन्दूक की तह में से पुड़िया निकाली और ससुर के सामने गेहूँ के पाँच दाने, जो अब काले हो गये थे, रखे।

गोपीचन्द ने उन्हे देख कर कहा-"ये सचमुच मेरे दिये हुये हैं। सुषमा और भोगवती के दिये हुये गेहूँ क्यों कि सुनहरे रङ्ग के हैं वे इसी फसल के हैं। ये गेहूँ मेरे दिये हुये नहीं हैं। क्या बात है ? मुझे सच बताओ।" गोपीचन्द ने बड़ी बहुओं से पूछा। बहाने करने की गुञ्जाईश न थी, उन्होंने सच कह दिया।

गोपीचन्द ने चौथी बहु से भी पूछा- "क्यों बेटी ! तुम्हे दिये हुये गेहूँ के पाँच दाने कहाँ हैं?"

"उन्हे मैंने मायके भेज दिया था। मँगाने के लिये कुछ समय चाहिये। दो दिन दीजिए।" रोहिणी ने कहा। गोपीचन्द मान गया। दो दिन खतम होते ही रोहिणी के मायके से गेहूँ की पचास गाडियाँ आ गई। गाडियाँ देख कर सबको आश्चर्य हुआ। पाँच साल पहले दिये हुये पाँच गेहूँ के दानों को ठीक तरह सुरक्षित रखने से पचास गाड़ी गेहूँ पैदा हो सका।

"देखा, घर को चलाने का काम चौथी बहु रोहिणी को सौंप दो। किस चीज़ को कैसे हिफाजत से रखना चाहिये, उसे मालूम है।" गोपीचन्द ने अपनी पत्नी से कहा।

"तब तीनों के बारे में क्या करोगे?" पत्नी ने पूछा।

"सुषमा को बेकाम चीज़ों के फेंकने की आदत है। कूडा कर्कट फेंक कर घर को साफ रखने का काम उसे दो।"

"भोगवती का यह गुण है कि जो चीज हाथ में आती है उसका मजा चखती है। इसलिये रसोई में खाना पकाने वगैरह का काम उसे सौंप दो।"

रक्षिका हर चीज़ को हिफाजत से रख सकती है। इसलिये घर के भण्डार की चाबी उसे दो।

"इस प्रकार काम काज बाँट देने से घरबार सुखपूर्वक चलेगा।" गोपीचन्द ने कहा।

चेतना को भी यह प्रबन्ध बड़ा जँचा। उसी प्रकार उसने बहुओं को काम बाँट दिया। स्वयं घरवार के काम से छुट्टी लेकर, राम नाम जपने लगी। बिना किसी फि और परवाह के आराम से जिन्दगी के बचे खुचे दिन बिताने लगी।

पथभ्रष्ट

पहिले कभी मणिपुरी राज्य में शशाङ्क नाम का राजा राज्य करता था। उसके राज्य में धर्म चारों पैरों पर चलता था। परन्तु शशाङ्क को एक ही चिन्ता सता रही थी। यद्यपि उसके राज्य में धर्म था पर प्रजा सन्तुष्ट न थी।

सवेरे से शाम तक सब अपना काम-काज करते रहते थे। किसी के चेहरे पर मुस्कुराहट नहीं दिखाई देती थी।

"प्रजा को खुश करने के लिये क्या किया जाय?" शशाङ्क दिलोजान से सोचने लगा। उसने इस विषय में कई प्रयत्न भी किये।

मगर कोई फायदा न हुआ। राजा भी उब गया। मन्त्री को दो दिन का समय दिया और कहा कि अगर दो दिन में प्रजा के मुँह पर मुस्कराहट न दिखाई दी, तो वह जीवित न रहेगा।

मन्त्री को कुछ नहीं सूझा। यह जङ्गल में भाग गया। रास्ते में उसे एक मुनि दिखाई दिया। उसने मुनि को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। और यह सोच कर कि वह उसकी समस्या हल कर देंगे, उसे राज- महल में भी ले आया। राजा ने उसका आतिथ्य किया।

बाद में, राजा ने भरे दरबार में मुनि से कहा-"हमारे राज्य में किसी को सन्तोष नहीं है। इस कारण हमें सुख नहीं है। क्या हमारे जन्म में सुख है ही नहीं महात्मा ?"

उसका जवाब मुनि ने यों दिया-"हैं क्यों नहीं महाराज? अगर तेरे राज्य में कोई भी एक नीति के मार्ग से हट जाय तो उसके बाद तेरे राज्य में भरपूर सन्तोष देखने को मिलेगा।" मुनि यह कहकर चला गया।

ये बातें सुन राजा और मन्त्री ने फिर अनेकों प्रयत्न किये। परन्तु कोई भी धर्म के मार्ग से टलता न दिखाई दिया।

एक दिन सवेरे रानी ने मुस्कराते हुये राजा को उठाया। पत्नी को मुस्कराता देख राजा को आश्चर्य हुआ। बाहर आने पर देखा कि सेनापति और मन्त्री जोर-जोर से हँस कर बातें कर रहे हैं। राजा ने नौकर नौकरानियों की भी देखा। सब के मुँह पर सन्तोष चमक रहा था। राजा ने मन में बड़ी शान्ति अनुभव की। उसने मन्त्री को बुलाया और कहा कि मालूम करो कि राज्य में धर्म के मार्ग से कौन हटा है और उसे हमारा आधा राज्य दे दो। मन्त्री सारा राज्य खोज आया पर उसे कोई भी धर्म मार्ग से विचलित नज़र नहीं आया।

शशाङ्क ने विदूषक को बुलवाया। "तुम इतने सालों से हमारा नमक खा रहे हो, पर तुमने कभी हमें हँसाने का नाम लिया ? हमारे राज्य में कल एक मुनीश्वर आया था। उसके आने के बाद से हमारी प्रजा में सन्तोष दिखाई दे रहा है। तुम अभी उसके पास जाओ और पता लगाओ कि इस सन्तोष का क्या रहस्य है? क्या कारण है ?"

विदूषक को गये हुये सप्ताह पर सप्ताह गुजर गये; पर उसके वापिस आने के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते थे। राजा ने मन्त्री को भेजा। मन्त्री भी वापिस न आया।

इस कारण राजा स्वयं मुनीश्वर के आश्रम को गया। औरों की तरह राजा भी वापिस न गया। राजा के न लौट आने पर, रानी घबराने लगी। उसने सोचा कि युवराज को भेजा जाय। मगर अपने इकलौते लड़के को कैसे भेजती ? अगर कुछ हो गया तो राज्य का उत्तराधिकारी कौन होगा? इस लिये उसे नहीं भेजा।

मणिपुरी के पड़ोस में ही एक सामन्त राज्य था। वहाँ का राजा बहुत बलवान था। वह इसी ताक में बैठा था कि मौका मिलने पर शशाङ्क के विरुद्ध विद्रोह करे। अब क्या था? उसने सोचा कि अब मौका आगया है। अपने समस्त दल बल के साथ उसने मणिपुरी पर आक्रमण कर दिया।

और कोई चारा नहीं था, रानी ने राजा को लिवा लाने के लिये अपने लड़के को भेजा। युवराज मुनीश्वर के आश्रम गया। वहाँ राजा और मुनीश्वर शतरञ्ज खेलने में मस्त थे। हारे हुये मन्त्री और विदूषक मुँह लम्बा किये एक तरफ खड़े थे।

युवराज ने सब कुछ कह सुनाया और पिता से कहा कि जल्द से जल्द चले। मगर राजा ने कहा कि "बस दो बार और खेलने दो, फिर चलेंगे। तब तक यहाँ से नहीं हिलूँगा।" युवराज को कुछ न सूझा। इधर पिता को देखता है तो वह वहाँ से हिलने को नहीं था और उधर शत्रुओं ने किले को घेर लिया था। इसलिये उसने स्वयं सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और सामन्त राजा का जोर-शोर से मुकाबला करने लगा।

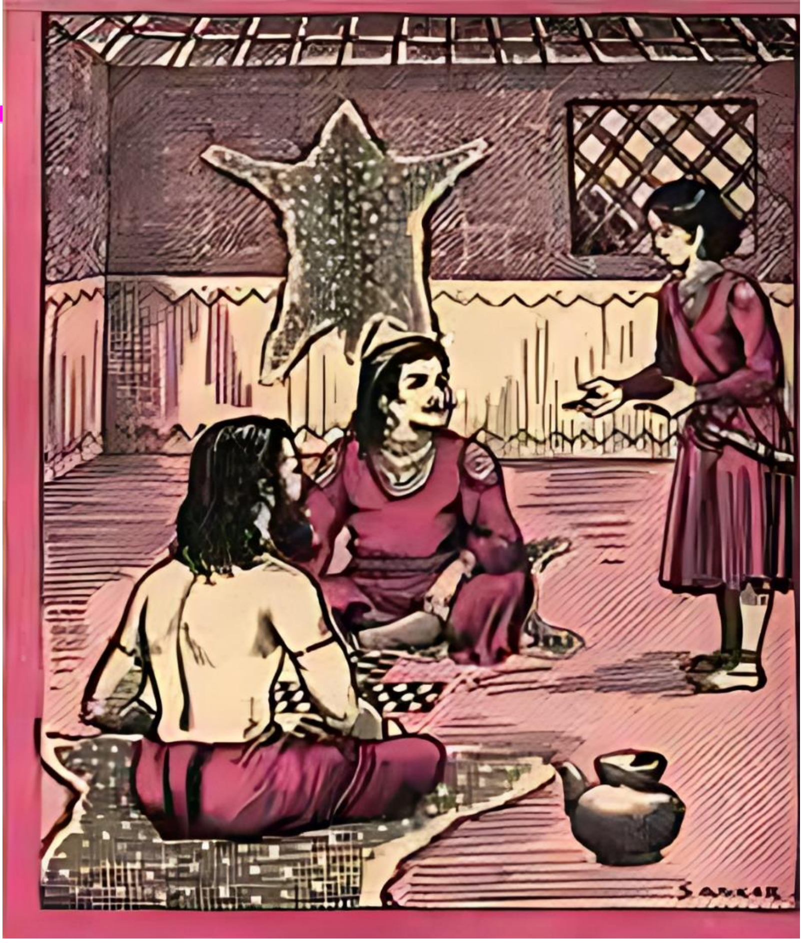

उस सामन्त राजा के पास बड़ी सेना थी। इसलिये उसने आसानी से युवराज को कैद कर लिया। और जो सैनिक कैद होते होते बच गये थे, उन्होने जाकर शशाङ्क को यह बताया।

इस खबर के कान में पड़ते ही राजा खौल उठा। फिर सेना को इकठ्ठा किया और शत्रु पर धावा बोल दिया। शशाङ्क की युद्ध कुशलता देख कर शत्रु के पैर उखड़ गये। शशाङ्क अपने लड़के को तुरन्त कैदखाने से छुड़ा कर राजधानी को सहर्ष वापिस आ गया।

राजा ने दरबार बुलाया और मुनीश्वर को आधा राज्य देना चाहा। परन्तु मुनि ने कहा-"सुख वैभव को छोड़ कर कन्द मूल खाकर जङ्गल में जीवन बिताने वाले के लिये भला राज्य की क्या जरूरत है ?"

बाद में शशाङ्क ने यह आज्ञा दी कि मन्त्री और विदूषक को फाँसी की सजा दी जाय क्यों कि वे अपने कर्तव्य को मूल कर शतरञ्ज खेलते बैठे रहे।

मन्त्री के कलेजे पर पत्थर-सा पड़ गया। विदूषक भी डर गया। चूँकि, मन्त्री बुद्धिमान था, उसने कुछ सोच विचार कर इस प्रकार कहा।

"महाराज! मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ। यह जरूर हमारा गुनाह है कि हम कर्तव्य को भूल कर शतरञ्ज खेलते रहे। पर महराज को एक बात सोचनी चाहिये। राजा, प्रजा के लिये पिता के समान है। इसलिये राज्य की रक्षा करने का कर्तव्य हम दोनों से अधिक महाराज का ही है न! आप विचार कर देखिये।"

यह बातें सुन राजा का मुँह फीका पड़ गया। उसने तुरन्त यह घोषणा कर दी कि उन दोनों का गुनाह माफ कर दिया गया है। यह भी आज्ञा दी कि तब से कोई भी इस तरह शतरञ्ज न खेले।

"तो फिर हमारे राज्य में सन्तोष कैसे होगा ?" मन्त्री ने अपना सन्देह प्रकट किया।

राजा को एक अच्छा उपाय सूझा। उसने सोचा कि अगर वैसा किया गया तो राज्य में हमेशा सन्तोष रहेगा।

अगले दिन ही युवराज का पट्टाभिषेक करवाया। तब से शशाङ्क स्वयं अन्तःपुर में पत्नी के साथ शतरञ्ज खेलता रहता। इधर शासन भी ठीक तरह चलता रहा और उधर राज्य में भी पूरा सन्तोष दिखाई देने लगा। इस तरह राजा को शान्ति मिली।

एक बार पार्वती परमेश्वर काशी नगरी के ऊपर घूमने के लिये निकले। वहाँ हजारों नर नारी गङ्गा नदी में स्नान कर रहे थे। कई विश्वेश्वर का दर्शन कर रहे थे, भेंट बढ़ा रहे थे, भजन कर रहे थे।

यह सब देख पार्वती ने पति से पूछा- "स्वामी ! हर रोज तेरी भक्ति के लिये इतने व्यक्ति काशी नगरी में आते हैं। क्या ये सब तेरे पास आ सकेंगे ? अगर ये सब कैलाश में आ गये तो कैलाश में इनके लिये काफी जगह मिल सकेगी कि नहीं ?"

इस पर शिवजी ने कहा-"तू भी कितनी नादान है। क्या तेरा मतलब यह है कि जो कोई काशी आता है वह कैलाश भी पहुँच जाता है? बिना पुण्य क्षेत्रों के दर्शन किये भक्त लोग मेरे पास आ सकते हैं। मेरे पास आने के कौन अधिकारी हैं, यह मैं तुझे प्रत्यक्ष दिखाऊँगा।" पार्वती परमेश्वर ने एक वृद्ध दम्पति का रूप धारण किया और विश्वेश्वर के मन्दिर के पास जाकर एक बढ़ के पेड़ के नीचे बैठ गये। शिव, वार्धक्य का कष्ट उठाने लगा, मानों मौत की अन्तिम घड़ी आगई हो। आहें भरने और कराहने लगा।

विश्वेश्वर के दर्शन के लिये न जाने कहाँ कहाँ से भक्त आ रहे थे। उनमें से कईयों ने उस वृद्ध दम्पति को देखा तक नहीं। कईयों ने देखा तो पर नाक भौं चढ़ा कर आगे चले गये।

इतने में एक यात्री आया, उसे देख कर बुढ़िया विनती करने लगी- "बाबू, यह मेरा पति है। मरने को है। मुख में थोड़ा पानी डालकर पुण्य कमाइये। आपकी कृपा होगी।"

यह सुन वह यात्री खिझ उठा और उसने कहा-"जहाँ देखो वहीं ये भिखारी हैं। अगर तुम सब लोगों को पानी देता रहा तो काम हो चुका। इतना रुपया खर्च कर यहाँ आये तो क्या तुम्हे पानी पिलाने के लिये ही आये ?" यात्री चल गया।

थोड़ी देर बाद फिर एक और व्यक्ति आया जो परम भक्त-सा दिखाई देता था। बुढ़िया के कहते ही गङ्गा का पानी देने को ही था कि इतने में बुढ़िया ने कहा-"बेटा! सुनो.... मेरे पति को पानी देने से पहिले एक नियम है। जब से तुमने होश सम्भाला है, तब से तुमने कोई पाप नहीं किया हुआ होना चाहिये। अगर ऐसी बात है तो पानी दो झूठ मत बोलो, अगर तुम झूठ बोलोगे तो मेरे पति की मृत्यु हो जायगी। उसका पाप भी तुम्हें लगेगा।"

यह बात सुन उस भक्त ने कहा- "खाना तक तो नसीब नहीं और नियम बनाने चली है ? अगर यह बूढ़ा मर गया तो कहीं ऐसा न हो उसका पाप मुझ पर ही पड़े। कहीं ऐसा न हो कि उपकार करने गए और और अपकार कर बैठे।" वह भक्त खिझता खिझता अपने रास्ते पर चला गया। फिर कई घण्टों तक उस वृद्ध दम्पति की मदद के लिये उस तरफ से कोई यात्री न गुजरा।

बाद में, कोई जङ्गली विश्वेश्वर का दर्शन करने उस रास्ते पर आया। बुढ़िया का आर्तनाद सुन कर उसने बुढ़े के गले में पानी डालना चाहा। परन्तु बुढ़िया का विचित्र नियम सुन उसे पहिले तो आश्चर्य हुआ।

फिर एकबार उसने वृद्ध दम्पति के मुँह पर देखा। उसे तुरन्त लगा उनके चेहरों पर एक दिव्य ज्योति-सी है।

जङ्गली यों सोचने लगा-"प्रति मनुष्य जब से पैदा हुआ है तब से कोई न कोई पाप करता ही रहता है। ऐसा कोई नहीं है जिसने पाप नहीं किया हो। मैं जङ्गल में रहता हूँ। मेरा पेशा ही जीव हिंसा है। मुझे भगवान ने यही पेशा दिया है। ईश्वर के दिये हुये पेशे के लिये मैं तो जिम्मेवार नहीं हूँ। हाँ, तो यह वृद्ध दम्पति अगर सामान्य दम्पति होता तो उनके चेहरों पर तेज नहीं होता। ये असाधारण हैं। ये सचमुच कोई बड़े महा-पुरुष हैं।

खैर ! मैंने अब तक न जाने कितने ही पाप किये हैं, मेरे पानी देने से अगर ये सामान्य व्यक्ति हैं, यही तो होगा कि ये मर जायेंगे। इतना ही तो होगा कि एक और पाप बढ़ जायेगा। अगर ऐसी बात नहीं है और ये कोई महा-पुरुष हैं तो मेरे सब पाप शायद कट जायेंगे।"

यह निश्चय कर उसने बूढ़े का मुख खोल कर उसमें गङ्गा का पानी डाल दिया। उसी समय वह वृद्ध दम्पति अन्तर्धान हो गया और उनकी जगह साक्षात् पार्वती परमेश्वर खड़े थे।

तब परमेश्वर ने पार्वती से कहा-"देखा, इस जङ्गली के धैर्य को ? यह मेरे विश्वास पर ही जी रहा है। क्योंकि उसका हृदय पवित्र था। हमारे दर्शन करने से उसके सब पाप दूर हो गये हैं। इस जैसे व्यक्ति ही कैलाश में रहने के योग्य हैं। वे ही वस्तुतः भक्त हैं। और जो झूठी मूठी पूजायें करते हैं वे मेरे भक्त नहीं हैं। वे मेरे पास नहीं आ सकते।" तब उन्होंने जङ्गली को आशीर्वाद दिया और वहाँ से चले गये।

उसी समय जङ्गली के लिये एक पुष्पक विमान आया और उसको देवलोक उड़ा ले गया।

न्यायसूत्र

हजारों वर्ष पहिले, धर्मपाल नाम का राजा धवलगिरी में राज्य करता था। यह कहा जाता था कि दान धर्म आदि गुणों में उसके समान कोई न था। न्याय के मामले में वह 'अपने' या 'पराये' का भेद भाव न दिखाता था। उस में लेश मात्र भी पक्षपात की भावना न थी।

"आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत" यही उसका न्याय सूत्र था। जिसको हानी हुयी हो, वह उसी प्रकार अपनी हानी का बदला हानी करने वाले पर ले सकता है, यही कानून उस राज्य में अमल में था।

एकबार धर्मपाल भरे दरबार में बैठा था। मन्त्री, सामन्त वगैरह, सुख से बैठे हुये थे। किसी मुख्य विषय पर बातचीत चल रही थी। उसी समय कोई काला नाग भटक कर वहाँ आ पड़ा।

काले नाग के दीखते ही दरबार में खलबली मच गई। कई कटार निकाल कर उसे मारने के लिये उठ खड़े हुये। परन्तु युवराज ने सबको रोककर स्वयं अपनी तलवार से काले नाग के दो भाग कर दिये।

इस तरह कट जाने पर भी, वहाँ से भाग कर यह काला नाग अपने बिल में पहुँचा। नाग की पत्नी अपने पति को विपत्ति में देख शोक मानने लगी। काले नाग ने बताया कि वह रास्ते से मटक कर कैसे दरबार में गया, और कैसे युवराज ने उसके टुकडे कर दिये।

अमरनाथ

युवराज का चिल्लाना सुन नौकर नौकरानियाँ वहाँ भागकर आई। पर किसी को यह न सूझा कि नाग की पत्नी को कैसे मारा जाय। युवराज के गले में लिपटे हुये साँप को मारते हैं तो युवराज को भी चोट लगती है।

तब नाग की पत्नी ने जोर देकर कहा-"आप राजा को बुला कर लाईये। पहिले मेरा फैसला होना चाहिये। अगर किसी ने मुझे मारना चाहा तो ख्याल रखना, मैं युवराज को काट खाऊँगी। खबरदार !"

इस बीच राजा खुद वहाँ आ गया। नाग की पत्नी ने राजा से कहा-"मेरे पति ने किसी को भी हानी पहुँचाने की नहीं सोची थी। वह अपने रास्ते पर जा रहा था। परन्तु युवराज ने यूँहि उसको मार कर मुझे विधवा बना दिया। इस राज्य के न्याय सूत्र के अनुसार मैं युवराज को मार कर उसकी पत्नी को विधवा बना सकती हूँ न ?"

कानून के अनुसार उसके पति को ख्वाहमख्वाह मार कर उसको विधवा बनाने

"तुझे इस राज्य का कानून तो मालूम ही है न ? उसके अनुसार ही राजा अपने पुत्र को दण्ड देगा। उस कानून के मुताबिक दोषी युवराज को तू काट कर मार सकता है। परन्तु तुझे राजा को फैसला देने के लिये कुछ समय देना चाहिये। जल्दबाजी में यूँ ही युवराज को हानि न पहुँचाना।" यह कह काले नाग ने प्राण छोड़ दिये। काले नाग की पत्नी उस रात को राज महल में जाकर युवराज के सोने के कमरे में जा घुसी और गहरी नींद में सोये हुये युवराज के गले में लिपट गयी। युवराज डर के मारे काँप उठा और मदद के लिये चिल्लाने लगा।

के अपराध में युवराज को दण्ड मिलना ही चाहिये। परन्तु उसका वह इकलौता लड़का था। इस आफत से कैसे बाहर निकला जाय? राजा सोचने लगा।

जब कुछ सूझा नहीं तब राजा ने दो न्यायाधीशों को बुलाया। नाग की पत्नी की कहानी सुन एक न्यायाधीश ने कहा-"महाराज ! आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत !" यह कनून तो सबको हमारे राज्य में मालूम ही है। युवराज के कारण चूँकि नाग का अपकार हुआ है। वह ही सचमुच युवराज की पत्नी को विधवा बना सकता है।"

नाग की पत्नी ने इस फैसले को अस्वीकार करते हुये अपना सिर हिलाया।

"यह निर्णय किस न्यायशास्त्र के बूते पर हुआ है? यह सिर्फ मुझे धोखा देने के लिये ये न्यायाधीश चाल चल रहे हैं। मेरा मृत पति भला कैसे युवराज की पत्नी को विधवा बना सकता है ?"

नाग की पत्नी के यह पूछने पर न्यायाधीश के मुख पर ताला लग गया। तब दूसरे न्यायाधीश ने इस प्रकार कहा-"नाग की पत्नी ने जो कहा है उसमें सच न हो, ऐसी बात नहीं । परन्तु यहाँ एक सन्देह हो रहा है...।" यह कहते कहते

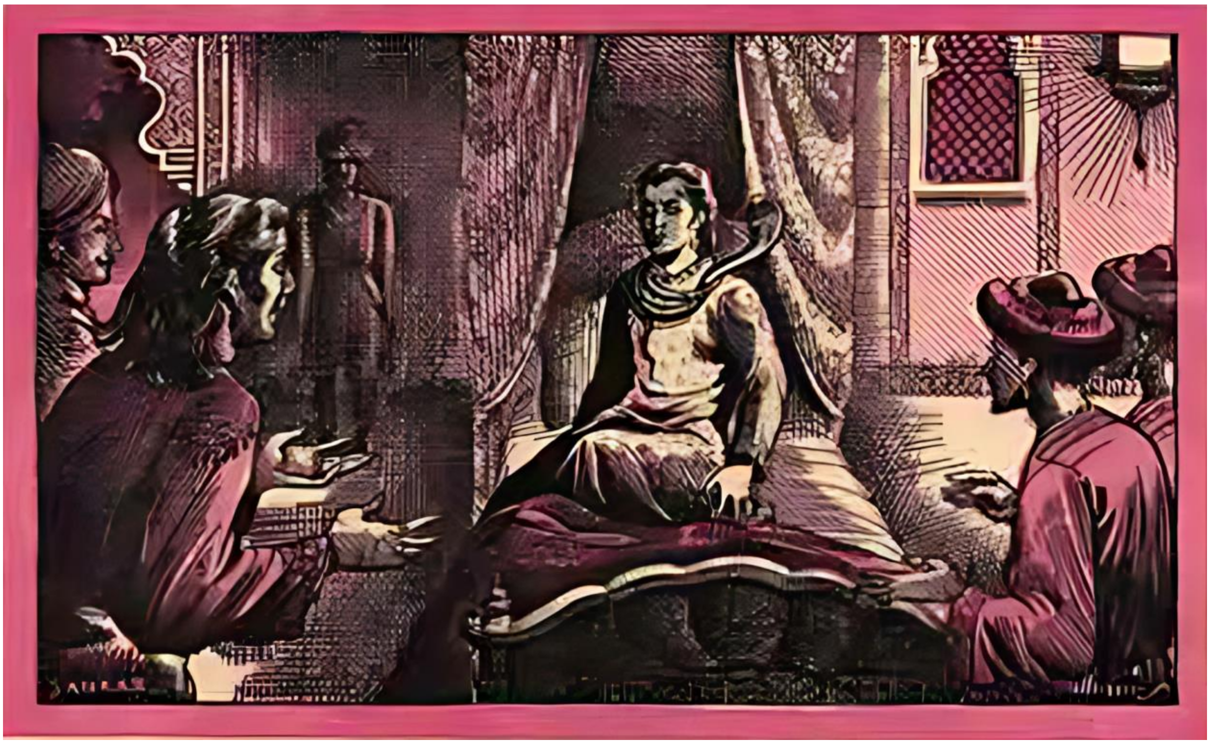

न्यायाधीश ने नाग की पत्नी से पूछा- "तुम्हारी कितनी सन्तान हैं?"

"मेरे पाँच पुत्र हैं।" नाग की पत्नी ने आँखों में आँसू भर कर कहा।

"ऐसी बात है। अफसोस। इसका मतलब यह है कि तुम्हे युवराज ने पाँच पुत्रों वाली विधवा बनाया है। इसलिये तुम्हे भी उनकी पत्नी को पाँच पुत्रोंवाली विधवा बनाना चाहिये। तभी हमारे न्याय सूत्र के अनुसार दण्ड दिया जा सकेगा। ठीक है कि नहीं ?" न्यायाधीश ने पूछा।

नाग की पत्नी ने सन्देह के साथ कहा-"हाँ, जी हाँ।"

तब न्यायाधीश कहने लगा-"इसलिये तुम्हे थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी चाहिये। इस समय युवरानी के दो ही लड़के हैं। जब वे भी पाँच पुत्रों की माँ हो जायें, तब तुम युवराज पर अपना बदला उतार सकती हो। न्याय यही है न ?" नाग की पत्नी को यह स्वीकार करना पड़ा कि यह फैसला राज्य में प्रचलित न्यायसूत्र के प्रकार ही हुआ है। इस कारण उसने राजा से एक निवेदन किया। युवरानी को जब पाँचवी सन्तान हो, उसको सूचित किया जाय।

न्यायशील राजा मान गया। परन्तु युवरानी को उसके बाद सन्तान ही नहीं हुए। जब कभी युवराज और युवरानी बगीचे में घूमने निकलते नाग की पत्नी उनको देखती।

बहुत साल गुजर गये। पर उनके साथ दो बच्चों से अधिक कभी न आये। नाग की पत्नी सोचने लगी कि मेरा बदला कैसे उतरेगा? इसी फिक्र में, कुछ दिनों बाद नाग की पत्नी, अपना बदला बिना लिये ही मर गई।

बहुत समय पहले, कुमार नाम का एक ग्वाला किसी गाँव में रहा करता था। वह नौजवान था और बहुत ही दिलेर था। हट्टा- कट्टा भी। इसलिये वह देश देशों के देखने, बड़े-बड़े युद्धों में भाग लेने के नित ख्वाब देखा करता।

एक बार ऐसा ही कुछ सोचता हुआ गोओं को चरने छोड़, कुमार एक पेड़ के नीचे लेट गया। थोड़ी देर में उसे नींद आ गई। नींद में उसे विचित्र विचित्र सपने आये।

उसे सपने में लगा जैसे वह एक पहाड़ पर चढ़ रहा हो, पहाड़ की चोटी पर जाने पर एक सिंहासन पर बैठा हुआ हो। सिंहासन पर उस तरह बैठने पर उसके बगल में एक सुन्दरी युवती रानी वेष में दिखाई दी। उसने आश्चर्य में सोचा यह क्या है? अपना सिर टटोल कर देखा तो सिर पर रत्नोंवाला एक मुकुट भी था। राजा का पहनावा भी था।

"मैं राजा हूँ। मैं राजा हूँ...।" कहता हुआ कुमार ने आँखें खोलीं और चारों तरफ देखा। वह जान गया कि वह सब एक झूठा सपना था। दूर गौवें चर रहीं थीं और पेड़ के नीचे वह पड़ा हुआ था। कितना अच्छा सपना आया था।" यह सोच कर वह बहुत देर तक हवाई किले बनाता रहा।

अगले दिन भी उसे वही सपना आया। तब कुमार को लगा कि उसका सपना जरूर सच होगा। "अगर कल भी मुझे ठीक इसी प्रकार का सपना आया तो सामनेवाले पहाड़ पर चढूँगा; क्या मालूम, शायद पहाड़ के पासवाले बालाभिपुरं का राजा मैं ही बन जाऊँ....!" कुमार सोचने लगा।

श्याम सुन्दर

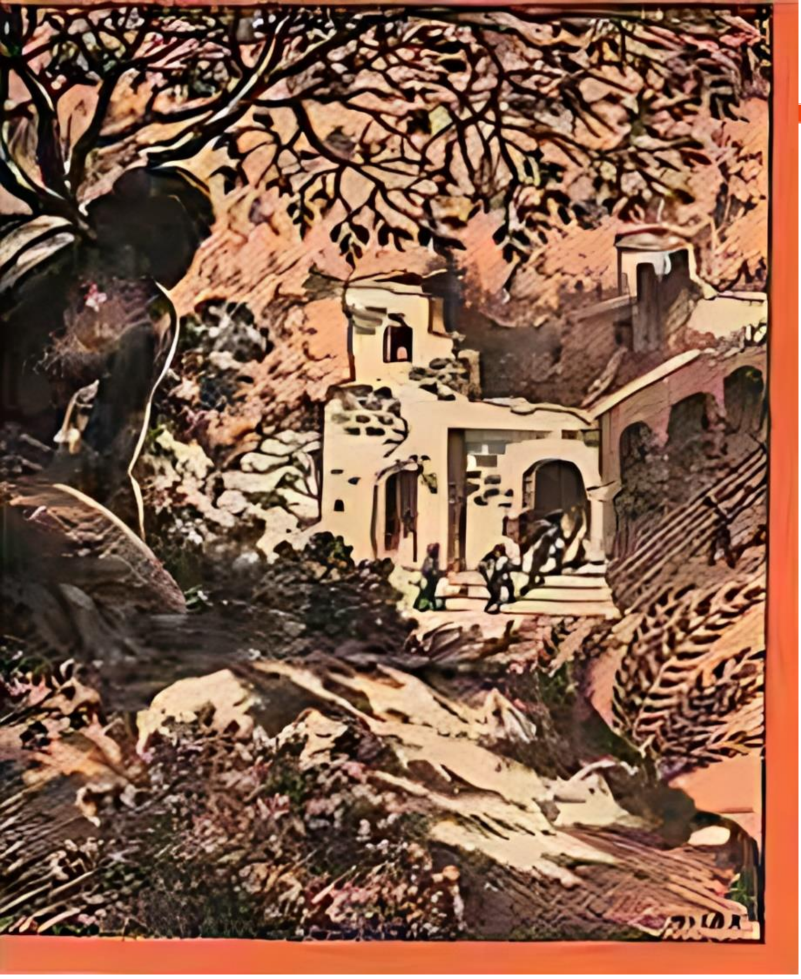

वहाँ और कुछ न था। उसने सोचा- "रात यहीं किसी पेड़ के नीचे काटी जाय, सवेरे होने पर किसी गाँव में पहुँच जायेंगे।"

कुमार वहाँ एक पेड़ के नीचे पैर समेट कर लेट गया। भूख की वजह से उसे ठीक तरह नींद नहीं आई। इस बीच उसको घोड़ों का हिनहिनाना, दो-चार आदमियों का आपस में बातचीत करना काफी साफ साफ सुनाई दिया।

कुमार कान खड़े करके उनकी बात सुनने लगा। उनकी बातचीत से उसने मालूम किया कि पास में ही कोई टूटा-फूटा मकान है। वे घुड़सवार उस टूटे-फूटे मकान में ही रात काटने की सोच रहे थे। कुमार पेड़ के नीचे से उठ, बिना किसी आहट के उनका पीछा करने लगा।

थोड़ी देर में वे टूटे फूटे मकान के पास पहुँचे। सब के सब घोड़ों पर से उतरे, मकान में घुस, दरी बिछाकर लेट गये। कुमार यह सोचते हुये कि क्या किया जाय वहीं दीवार की ओट में, अन्धेरे में खड़ा रहा। वे कहीं चोर न हो यह सोचकर उसे

तीसरे दिन भी कुमार को बही सपना आया। उसने सोचा कि अब गौवों को चराने से काम नहीं चलेगा। पेड़ के नीचे से उठ कर पहाड़ की ओर चला। शाम होते-होते जैसे-तैसे यह पहाड़ पर चढ़ गया। परन्तु वहाँ न सिंहासन था न रानी ही। किन्तु कुमार बिलकुल हताश नहीं हुआ। अन्धेरा होते ही, पहाड़ से उतर कर बालाभिपुरं में उसने प्रवेश किया।

उसे तब बड़े जोर से भूख लग रही थी। उसने चारों तरफ देखा, पर कहीं न कोई गाँव दिखाई दिया न आदमियों की चहल-पहल ही। अन्धेरा, और घने जङ्गल के सिवाय

डर लगा। कुछ देर में उसका डर सच भी निकला। उनमें से एक ने रौब से पूछा-"क्यों बे मटरू ! आज तू क्या कमा कर लाया है?" यह सुन मटरू नाम वाला व्यक्ति यों कहने लगा-

"हुजूर! आज तो में एक ऐसी चीज लाया हूँ, जो हमें सपने में भी नहीं मिल सकती। वह कोई रईस लगता था। उसी का कोट चुरा लाया हूँ। जब कभी हमें पैसे की जरूरत हो, उस कोट की जेब टटोलने से मोहरें बरसने लगेगी।" सरदार ने "वाह खूब" कहकर उसकी बड़ी तारीफ की।

"अरे भरता ! तूने क्या कमाया है ?" सरदार ने पूछा। भरता यों कहने लगा-

"हुजूर ! काज खुशकिस्मती से मुझे एक सेनापति सख्त खतरे में फँसा हुआ दिखाई दिया। उसकी तिकोनी टोपी मैं चुरा लाया हूँ। उस टोपी को सिर पर रखते ही, जरूरत पड़ने पर तीनों दिशाओं में वाण वर्षा होने लगती है।

"बहुत अच्छा! भरता तूने कमाल का काम किया है। अच्छा जीवन, तू क्या लाया है ?" सरदार ने पूछा।

"हुजूर! मैं एक तलवार लाया हूँ। जब कभी हम चाहें, उसे जमीन में भोंक देने से हर बार, हजार हजार सिपाही पैदा हो जायेंगे।" जीवन ने कहा।

"अच्छा, अच्छा काम किया। उन सबको दीवार पर होशियारी से टाँग दो और अब सो जाओ। सवेरे बहुत काम करना है।" चोरों के सरदार ने कहा।

कुमार ने उनकी बातचीत सुनी। चोरों के सोते ही, दीवार पर टँगी हुई तलवार, टोपी, और कोट को लेकर वह वहाँ से भाग गया। दो तीन दिन में बालाभिपुरं पहुँच

कर उसने राजदर्शन के लिये अनुमति माँगी। "तू कौन है ? राजदर्शन तूने इतना आसान समझ रखा है ?" महल के पहरेदारों ने उससे डाँट डपट कर पूछा। कुमार को जरा रञ्ज हुआ।

"ओहो, ऐसी बात है। तो इसका मतलब है, तुम लोगों ने मेरा नाम नहीं सुना है। तुम महावीर कुमार सिंह को नहीं जानते ?" आँख लाल करते हुये कुमार ने पूछा।

"ओह आप आप है महावीर कुमार सिंह जी ! तशरीफ लाईये।" कहते हुये कुमार को पहरेदार राजा के पास ले गये। उस समय राजसिंहासन के बगल में राजकुमारी भी बैठी हुई थी, उसको देखते ही कुमार को लगा मानो उसका सपना पूरा हो रहा हो। सिवाय मुकुट के वह हूबहू सपने में दिखाई दी रानी के समान थी। उसकी शक्लोसूरत ठीक वैसी ही थी।

राजा ने कुमार को देखकर पूछा- "तुम्हे क्या चाहिये ?"

कुमार ने सिर्फ तलवार और टोपी के बारे में ही कहा। उसने बताया कि उसने कई युद्धों में भाग लिया है, और वह वीर है।

"अगर चाहिये तो मैं इस संसार को जीत कर आपको चक्रवर्ती सम्राट बना सकता हूँ।" आखिर में कुमार ने कहा।

राजा को बहुत आनन्द हुआ। "तू संसार को तो बाद में जीतना, अगर हिम्मत है तो पहले इस गान्धार राजा को हराओ जो हमारे देश पर बड़ी सेना के साथ हमला कर रहा है।" राजा ने कहा।

"यह कौन सी बड़ी बात है? परन्तु मेरी एक इच्छा है। गान्धार राजा के मेरे जीतने पर क्या आप अपनी पुत्री का विवाह मुझ से करेंगे?" कुमार ने पूछा। राजा ने कहा-

"बहुत अच्छा।" गान्धार राजा के आक्रमण के कारण वह बुरी आफत में था। इसके अतिरिक्त, उतने बलवान राजा के विजेता को अपनी लड़की को विवाह में देना. उसने अपने लिये गौरव का विषय समझा। वह मन ही मन खुश हुआ।

फिर क्या था? कुमार कुछ सिपाहियों को साथ लेकर गान्धार राजा का मुकाबला करने के लिये निकला। घमासान युद्ध हुआ। दोनों तरफ के कई सिपाही मारे गये। कुमार जब कभी सैनिकों की आवश्यकता अनुभव करता, तभी भूमि पर तलवार भोंक कर हजार सैनिकों को बुलवा लेता। इसके अलावा, उसकी टोपी में से जब बाण वर्षा होने लगी तो सैनिकों में भगदौड़ मच गई। वे धड़ाधड़ भरने लगे।

साँझ होने पर, जो सैनिक जिन्दा रह गये थे उनको लेकर गान्धार राजा मैदान छोड़ कर भाग गया। विजेता कुमार सनिको के जय निनादों के साथ सीधे बालाभिपुरं राजा के पास गया।

राजा ने कुमार का अभिनन्दन किया-"कुमार सिंह! तुमसे ज्यादा वीर दामाद मुझे नहीं मिलेगा। मैं चूँकि अब बूढ़ा हो गया हूँ, तुम्हारा अभी पट्टाभिषेक करवाये देता हूँ।" राजा ने मुस्कराते हुये कहा।

कुमार का राजकुमारी के साथ बड़े धूम-धाम से विवाह हुआ। बाद में पट्टाभिषेक भी हुआ। जब यह राज-सिंहासन पर बैठा तो बगल में राजकुमारी भी मुकुट पहने बैठी थी।

"मैंने सपने में जो रानी देखी थी, वह यही है।" यह ख्याल कर वह फूला न समाया।

राजकुमारी भी इतने बड़े वीर के साथ विवाह कर, बहुत ही सन्तुष्ट हुई। उसे अपना सौभाग्य समझा।

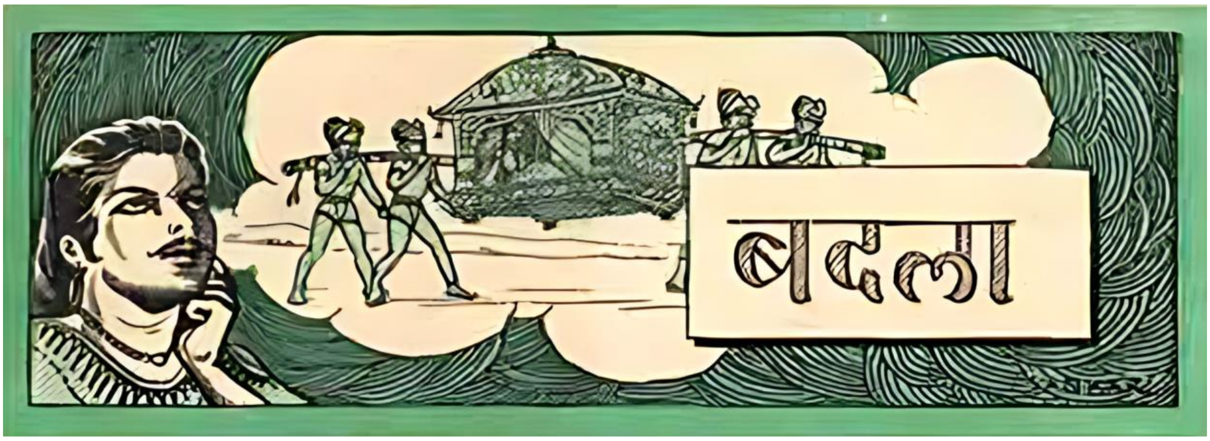

पहले, नेपाल देश के पास शाक्य वंश के लोगों का राज्य था। शाक्य राज्य की राजधानी कपिलवस्तु थी। शाक्य उस जमाने के कोशल देश के राजा प्रसेनजित के नीचे सामन्त थे। यद्यपि वे उनके नीचे थे, पर उनको अपनी जाति पर अभिमान था। इसलिये वे दूसरी जातियों से विवाह सम्बन्ध आदि नहीं किया करते थे।

कोशल राज को भगवान बुद्ध के प्रति भक्ति थी। चूँकि भगवान बुद्ध शाक्य वंश के थे; उनसे और अधिक निकटतर सम्बन्ध बनाने के लिये, प्रसेनजित ने निश्चय किया कि वह शाक्य स्त्री से विवाह कर उसको अपनी महारानी बनायेगा।

दूतों द्वारा उसने अपने निश्चय की सूचना उन्हें दी और उनसे कन्यादान करने के लिये कहा। शाक्य वंश के लोग द्विविधा में फँसे। अगर वे कोशल राजा के इच्छा के अनुसार कन्यादान नहीं करते हैं तो नाश अवश्यम्भावी है। अगर करते हैं तो वह उनकी परम्परा के विरुद्ध होगा। इसका निश्चय करने के लिये सभायें बुलाई गई। चर्चा हुई, वाद-विवाद हुये।

तब महानाम नाम के एक व्यक्ति ने कहा-"आप फिक्र मत कीजिये। मेरी लड़की 'बासव क्षत्रिया' दासी से पैदा हुई है। अच्छी लक्षणवाली है। उसे शाक्य-युवती कह कर कोशल राजा के पास भेजा जाय।" सब ने यह सुझाव मान लिया। "आफत टली!" यह समझ सब सन्तुष्ट हुये।

महानाम ने कोशल राज्य के दूतों को बुला कर कहा-"हम कन्यादान करेंगे। आप लड़की को अपने देश लिवा ले जा सकते हैं। परन्तु दूतों को मालूम था

कि जात-पात के विषय में शाक्य बहुत पक्के थे। अब उनके इस तरह आसानी से मान जाने से उन्हें सन्देह हुआ-"यह कन्या शायद शाक्य वंश की नहीं है। धोखा दिया जा रहा है।" उन लोगों ने सोचा।

"अच्छा! अगर यह कन्या आपके साथ एक ही थाली में भोजन करे तो हम उसे ले जायेंगे, वरना नहीं।" दूतों ने इस प्रकार परीक्षा कर अपना सन्देह दूर करना चाहा। शाक्य फिर सोच में पड़े। उन्होंने यह आखिर तय किया कि जैसे-तैसे कोशल राजा के दूतों को बहका कर भेजा जाय। उन्होंने एक उपाय भी सोच निकाला।

महानाम भोजन के लिये बैठ गया। कुछ दूरी पर दूत बैठे हुये थे। महानाम ने एक दासी को बुलाकर कहा-"लड़की को बुला लाओ। हमारे साथ खाना खायेगी। तुरत वासव आई और पिता के साथ उनकी थाली के सामने बैठ गई। महानाम ने एक कौर मुख में रखा। वासव क्षत्रिया ने भी थाली में हाथ रखा। वह दुसरा कौर लेने को ही था... इस बीच एक सिपाही ने एक पत्र दिखा कर कहा-"महाराज ! अवन्ती राजा ने यह पत्र भेजा है।

एकदम, इसी समय जवाब माँगा है।"

महानाम का दाहिना हाथ थाली में था। बायें हाथ में पत्र लेकर वह पढ़ने लगा और लड़की से कहा-"तुम खाती रहो।" वासव खाती चली गई। महानाम बड़े गौर से पत्र पढ़ता गया। लड़की के भोजन समाप्त होते ही पिता और पुत्री ने हाथ धो लिये।

कोशल राज के दूतों को यह चाल समझ में नहीं आई। उन्हें यह विश्वास हो गया कि वासव महानाम की ही लड़की है। शाक्य खुश हुये। महानाम ने वैभव के साथ लड़की को कोशल देश भेजा।

कोशल राजा भी बड़े सन्तुष्ट हुये और उसे अपनी महारानी बना लिया। कुछ महीनों बाद वासव का एक बहुत सुन्दर लड़का भी पैदा हुआ। उस लड़के का नाम 'विरूढ़' रखा गया।

विरूढ़ बड़ा हो गया। एक दिन अपनी माँ के पास जाकर उसने कहा-"माँ, बच्चे सब अपने ननिहाल जा रहे हैं। मैं भी अपने नाना के घर जाऊँगा।" उसने जिद पकड़ी। यह बात सुनते ही बासव को ऐसा लगा जैसे कि सिर पर बिजली गिर गई हो। उसे कई तरह समझाया। वह न माना।

आखिर माँ को उसको जाने के लिये अनुमति देनी पड़ी। छुपे छुपे वासव ने अपने पिता को यह चिट्ठी लिखी- "आपका पोता कपिलवस्तु आ रहा है। उसे यह रहस्य जानने न दीजिये।"

यह जानते ही कि विरूढ़ आ रहा है, शाक्यों ने अपने बच्चों को अडोस पड़ोस के गाँवो में भेज दिया। इसका कारण यह था कि वे नहीं चाहते थे कि कोई भी शाक्य वंशज दासी पुत्र 'विरूढ़' के सामने नमस्कार करे।

विरूढ़ कपिल वस्तु पहुँचा। उसका स्वागत करने के लिये शाक्यों ने एक सभा में राजकुमार से सब का परिचय करवाया। विरूढ़ ने एक एक करके सब को नमस्ते की। परन्तु किसी भी शाक्य ने उसको नमस्कार नहीं किया। विरूढ़ को यह सब आश्चर्यजनक लग रहा था। शाक्यों ने उसके रहने सहने और खाने पीने का बड़ी साबधानी से प्रबन्ध किया।

कुछ दिन वहाँ रहकर विरूढ़ फिर अपनी राजधानी को रवाना हुआ। उसके सैनिकों में से एक कोई चीज़ उस घर में भूल आया था, जहाँ वे ठहरे हुये थे। वह उसे लेने

फिर वापिस गया। वहाँ उसे एक बड़ा अजीब नजारा दिखाई दिया। एक बुढ़िया कोसती हुई, जिस जगह पर बिरूद बैठा करता था, दूध से साफ़ कर रही थी। सैनिक ने बुढ़िया से सच बात मालूम कर ली। वह बात उसने साथ के सैनिकों से भी कही। खलबली मची कानों कान यह बात विरूढ़ तक पहुँची। उसे बहुत गुस्सा आया। "मेरी बैठने की जगह को शाक्यों ने दूध से साफ की है। यह काफी नहीं है। मैं जब राजा बनूँगा, तब उसी जगह को शाक्यों के खून से साफ करूँगा। तब तक वह जगह पवित्र नहीं होगी।" विरूढ़ ने यह प्रतिज्ञा की।

विरूढ़ के कोशल राज्य में पहुँचते ही यह बात प्रसेनजित को भी पता लगी। वह भी कुद्ध हुआ। परन्तु यह सोचकर कि उसके गुरू बुद्ध भगवान का कहीं अपकार न हो, उसने पुत्र को सलाह दी कि वह शाक्यों को हानो न पहुँचाये।

मगर विरूढ़ ने पिता की बात न सुनी। वह कोशल राज्य की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने सब से पहिले शाक्य वंश के नाश करने का सङ्कल्प किया। माँ वासव क्षत्रिया ने आँखों में आँसू रख उसे बहुत समझाया। परन्तु वह न माना।

एक बड़ी सेना लेकर उसने शाक्यों पर धावा बोल दिया। वे धावे का मुकाबला न कर सके। विरूढ़ ने बिना किसी दया दाक्षिण्य के शाक्यों का नर संहार किया। खून की नदियाँ बहने लगीं।

उस रक्त से शाक्य राज्य में वह जहाँ बैठा करता था, उसने उस जगह को साफ किया। इसतरह विरूढ़ ने अपना बदला उतारा। शाक्य वंश और शाक्य राज्य दोनों का सर्वनाश हो गया।

CHANDAMAMA (Hindi) SEPTEMBER 1964 Regd. No. M. 546

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र — ४